वार्षिक रु. ६०.०० मूल्य रु. ८.००
विवेक-ज्योति
वर्ष ४७ अंक ५ मई २००९
रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ. ग.)

मंगल कामना

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

सब सुखी हों।

सब रोगरहित हों।

सब कल्याण का साक्षात्कार करें।

दुःख का अंश किसी को भी प्राप्त न हो।

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

मई २००९

प्रबन्ध सम्पादक

स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक

स्वामी विदेहात्मानन्द

वर्ष ४७
अंक ५

वार्षिक ६०/– **एक प्रति ८/–**

५ वर्षों के लिये – रु. २७५/–

आजीवन (२५ वर्षों के लिए) – रु. १,२००/–

(सदस्यता -शुल्क की राशि स्पीडपोस्ट मनिआर्डर से भेजें अथवा बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ

विदेशों में – वार्षिक २० डॉलर; आजीवन २५० डॉलर (हवाई डाक से) १२५ डॉलर (समुद्री डाक से)

संस्थाओं के लिये –

वार्षिक ९०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ४००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५

आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, २२२४११९

(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : २५४६६०३)

लेखकों से निवेदन

पत्रिका के लिये रचना भेजते समय निम्न बातों पर ध्यान दें –

(१) धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा किसी भी जीवनोपयोगी विषयक रचना को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है ।

(२) रचना बहुत लम्बी न हो । पत्रिका के दो या अधिक-से-अधिक चार पृष्ठों में आ जाय । पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हो । भेजने के पूर्व एक बार स्वयं अवश्य पढ़ लें ।

(३) लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें ।

(४) आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें । अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें ।

(५) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ कवितायें इतनी संख्या में आती हैं कि उनका प्राप्ति-संवाद देना सम्भव नहीं होता । स्वीकृत होने पर भी उसके प्रकाशन में ६-८ महीने तक लग सकते हैं ।

(६) अनुवादित रचनाओं के मूल स्रोत का पूरा विवरण दिया जाय तथा उसकी एक प्रतिलिपि भी संलग्न की जाय ।

(७) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त मतों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा ।

(८) 'विवेक-ज्योति' के लिये भेजी जा रही रचना यदि इसके पूर्व कहीं अन्यत्र प्रकाशित हो चुकी हो या प्रकाशनार्थ भेजी जा रही हो, तो उसका भी उल्लेख अवश्य करें । वैसे इसमें मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है ।

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट - 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें । यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें ।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें ।

(३) पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें । उसके बाद अंक उपलब्ध रहने पर ही पुन: प्रेषित किया जायेगा ।

(४) अंक सुरक्षित पाने हेतु प्रति अंक ६/- रूपये अतिरिक्त खर्च कर इसे वी.पी. पोस्ट से मँगाया जा सकता है । यह राशि प्रति माह अंक लेते समय पोस्टमैन को देनी होगी, अत: इसे हमें मत भेजें ।

(५) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें ।

विवेक-चूडामणि

– श्री शंकराचार्य

नभो नभस्वद्दहनाम्बुभूमयः
सूक्ष्माणि भूतानि भवन्ति तानि ।।७३।।
परस्परांशैर्मिलितानि भूत्वा
स्थूलानि च स्थूल-शरीर-हेतवः ।
मात्रास्तदीया विषया भवन्ति
शब्दादयः पञ्च सुखाय भोक्तुः ।।७४।।

अन्वय – नभः नभस्वत्-दहन-अम्बु-भूमयः तानि सूक्ष्माणि भूतानि परस्परांशैः मिलितानि भूत्वा स्थूलानि च स्थूल-शरीर-हेतवः तदीयाः मात्राः भोक्तुः सुखाय शब्दादयः पञ्च विषयाः भवन्ति ।

अर्थ – आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी – ये सूक्ष्म पंचभूत हैं; जो एक-दूसरे के अंशों से मिलकर स्थूल तथा स्थूल शरीर के गठन का हेतु बनते हैं। उनके (सूक्ष्म पंचभूत) गुण (मिलकर) भोक्ता जीव के सुख हेतु शब्द आदि (स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) – पाँच विषय बनते हैं।

य एषु मूढा विषयेषु बद्धा
रागोरुपाशेन सुदुर्दमेन ।
आयान्ति निर्यान्त्यध ऊर्ध्वमुच्चैः
स्वकर्मदूतेन जवेन नीताः ।।७५।।

अन्वय – ये मूढाः एषु विषयेषु सुदुर्दमेन राग-ऊरु-पाशेन बद्धाः स्वकर्म-दूतेन जवेन नीताः अधः उच्चैः ऊर्ध्वं आयान्ति निर्यान्ति ।

अर्थ – जो मूढ़जन इन विषयों के अति दुर्भेद्य आसक्ति रूपी महापाश से बँधे हुए हैं, वे अपने कर्मों-रूपी दूत द्वारा बलपूर्वक खींचे जाकर नीचे तथा ऊपर आते-जाते रहते हैं।

शब्दादिभिः पञ्चभिरेव पञ्च
पञ्चत्वमापुः स्वगुणेन बद्धाः ।
कुरङ्ग-मातङ्ग-पतङ्ग-मीन-
भृङ्गा नरः पञ्चभिरञ्चितः किम् ।।७६।।

अन्वय – कुरङ्ग–मातङ्ग–पतङ्ग–मीन–भृङ्गाः पञ्च शब्द-आदिभिः पञ्चभिः एव स्वगुणेन बद्धाः पञ्चत्वं आपुः, पञ्चभिः अञ्चितः नरः किम्?

अर्थ – हिरण, हाथी, पतंगा, मछली, तथा भ्रमर – ये पाँच तरह के जीव अपने-अपने गुण के अनुसार (क्रमशः) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध – इन पाँच में से एक-एक विषय में आबद्ध होकर मृत्यु को प्राप्त करते हैं; तो फिर इन पाँचों में आसक्त रहनेवाले मनुष्य की क्या गति होनेवाली है?

दोषेण तीव्रो विषयः कृष्ण-सर्प-विषादपि ।
विषं निहन्ति भोक्तारं द्रष्टारं चक्षुषाप्ययम् ।।७७।।

अन्वय – विषयः दोषेण कृष्ण-सर्प-विषात् अपि तीव्रः, विषं भोक्तारं निहन्ति, (किन्तु) अयम् चक्षुषा अपि द्रष्टारं (निहन्ति)।

अर्थ – दोष की दृष्टि से देखें, तो भोग्य विषय काले नाग के विष से भी अधिक तीव्र होता है, (क्योंकि) विष तो खानेवाले को ही मारता है, परन्तु यह (विषय) आँखों से देखनेवाले को भी मार डालता है।

विषयाशा-महा-पाशाद्-यो विमुक्तः सु-दुस्त्यजात् ।
स एव कल्पते मुक्त्यै नान्यः षट्शास्त्र-वेद्यपि ।।७८।।

अन्वय – सु-दुस्त्यजात् विषय–आशा–महापाशात् यः विमुक्तः सः एव मुक्त्यै कल्पते, अन्यः षट्शास्त्रवेदी अपि न ।

अर्थ – विषयों की आशा रूपी इस महा-बन्धन का त्याग करना अत्यन्त कठिन है; इससे मुक्त होनेवाला व्यक्ति ही मुक्ति का अधिकारी है, अन्य कोई भी – यहाँ तक कि छहों शास्त्रों को जाननेवाला भी नहीं। ❖ **(क्रमशः)** ❖

माँ-काली के मन्दिर में स्वामी विवेकानन्द

(स्वामीजी अपनी युवावस्था में बड़ी कठिनाई में पड़ गये थे। पिता का सहसा देहान्त हो गया और पता चला कि वे कुछ विशेष धन-सम्पदा नहीं छोड़ गये हैं। घर में लगभग भूखमरी की नौबत आ गयी। काफी प्रयास करने के बावजूद उन्हें कोई उपयुक्त नौकरी या आजीविका का साधन नहीं मिल सका। एक दिन वे दक्षिणेश्वर आये और श्रीरामकृष्ण से आग्रह किया कि वे माँ-काली से कहकर उनके परिवार के अभाव तथा कष्टों को दूर करा दें। श्रीरामकृष्ण ने उनसे कहा कि क्यों न वे स्वयं ही माँ-काली के मन्दिर में जाकर प्रार्थना करें, परन्तु वहाँ जाकर स्वामीजी अपने परिवार के आर्थिक संकट को भूलकर कुछ और ही माँग बैठते हैं -)

(मारूबिहाग–रूपक)

ज्ञान दे वैराग्य दे माँ,
दे अहैतुक भक्ति मुझको,
भव-जलधि से तार दे माँ।।

था नहीं विश्वास तुझ पर,
इसलिए ही कष्ट पाया,
किन्तु गुरु-आदेश पाकर,
मैं तुम्हारी शरण आया।
दास हूँ चिरकाल का मैं,
जिन्दगी का सार दे माँ।।

ज्योंहि देवालय में आया,
देख जाग्रत मूर्ति तेरी,
लग रहा अब तो मुझे,
करुणामयी तू जननी मेरी।
स्नेह का अमृत पिलाकर,
क्यूँ मुझे न उबार दे माँ !!

आ यहाँ त्रय बार भी,
संकल्प निज मैंने भुलाया,
चाहिए मुझको नहीं,
इस जड़-जगत् की तुच्छ माया।
गोद में अपने बिठाकर,
निज हृदय का प्यार दे माँ।।

– *विदेह*

ज्ञान का मार्ग (२)

स्वामी विवेकानन्द

स्वामीजी की भारत सम्बन्धी उक्तियों का एक उत्कृष्ट संकलन कोलकाता के रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर ने My India, The India Eternal शीर्षक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया है। प्रस्तुत है उन्हीं उक्तियों का हिन्दी रूपान्तरण। – सं.)

समाज के एक अंश के लोगों को जगत् के सारे कार्यों तथा विकास को – प्रतियोगिता और संघर्ष – इन दो में से केवल एक घटक पर आधारित बताने का क्या अधिकार है? विश्व के सारे कार्यों को द्वेष, युद्ध, प्रतियोगिता और संघर्ष पर अधिष्ठित मानने का उन्हें क्या अधिकार है? उनके अस्तित्व को हम इनकार नहीं करते। किन्तु उन्हें दूसरी शक्ति की क्रिया को बिल्कुल न मानने का क्या अधिकार है? क्या कोई व्यक्ति यह अस्वीकार कर सकता है कि प्रेम, निरहंकारिता या त्याग ही जगत् की एकमात्र सकारात्मक शक्ति है? दूसरी शक्ति इस प्रेम-शक्ति का ही असम्यक् प्रयोग है; प्रेम से ही प्रतिद्वन्द्विता की उत्पत्ति होती है, प्रेम ही प्रतियोगिता का मूल है। नि:स्वार्थता ही बुराई की माता है। अच्छाई ही बुराई का जनक है, और बुराई का परिणाम भी अच्छाई के सिवा और कुछ नहीं है। जो व्यक्ति दूसरे की हत्या करता है, वह भी प्राय: अपने पुत्रादि के प्रति स्नेह की प्रेरणा से तथा उनके लालन-पालन के लिये ही करता है। उसका प्रेम संसार के अन्य लाखों लोगों से हटकर केवल अपने बच्चे में सीमित हो जाता है, पर ससीम हो या असीम, वह मूलत: प्रेम ही है।

अत: सारे जगत् की परिचालक, जगत् में एकमात्र प्रकृत और जीवन्त शक्ति वही एक अदभुत वस्तु है – वह किसी भी आकार में व्यक्त क्यों न हो और वह है प्रेम, नि:स्वार्थता तथा त्याग। इसीलिये वेदान्त अद्वैत पर जोर देता है।[२३ख]

केवल अद्वैतवाद से ही नैतिकता की व्याख्या हो सकती है। प्रत्येक धर्म यही प्रचार कर रहा है कि सारी नैतिकता का सार दूसरों का हित करना ही है। क्यों हम दूसरों का हित करें? हमें नि:स्वार्थ होना चाहिये। क्यों नि:स्वार्थ होना चाहिये? कोई देवता ऐसा कह गये हैं? मैं उन्हें नहीं मानता। शास्त्रों ने ऐसा कहा है। हम उन्हें क्यों मानें? शास्त्र यदि ऐसा कहते हैं तो मेरे लिये उनका क्या महत्त्व है? संसार के अधिकांश लोगों की यही नीति है कि हर कोई बाकी लोगों की चिन्ता छोड़कर केवल अपना ही भला देखता है। मैं क्यों नैतिक बनूँ? गीता में वर्णित इस सत्य को जाने बिना तुम उत्तर नहीं पा सकते – ''जो व्यक्ति अपनी आत्मा को सब जीवों में स्थित देखता है और आत्मा में सब जीवों को देखता है, वह इस तरह ईश्वर को सर्वत्र समभाव से अवस्थित देखता हुआ आत्मा द्वारा आत्मा की हिंसा नहीं करता।'' अद्वैतवाद की शिक्षा से तुम्हें यह ज्ञान होता है कि दूसरों की हिंसा करके तुम अपनी ही हिंसा करते हो, क्योंकि सब तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हें मालूम हो या न हो, सब हाथों से तुम्हीं कार्य कर रहे हो, सब पैरों से तुम्हीं चल रहे हो, राजा के रूप में तुम्हीं महल में सुख-भोग कर रहे हो, फिर तुम्हीं रास्ते के भिखारी के रूप में दुखमय जीवन बिता रहे हो। अज्ञ में भी तुम हो, विद्वान् में भी तुम हो, दुर्बल में भी तुम हो, सबल में भी तुम हो। इस तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके तुम्हें सबके प्रति सहानुभूति रखनी चाहिये। चूँकि दूसरे को कष्ट देना अपने ही को कष्ट पहुँचाना है, अत: हमें कदापि दूसरों को कष्ट नहीं देना चाहिये। यदि मैं बिना भोजन के मर भी जाऊँ तो भी मुझे इसकी चिन्ता नहीं, क्योंकि जब मैं भूखा मर रहा हूँ उसी समय मैं लाखों मुखों से भोजन भी कर रहा हूँ। अत: हमें 'मैं'-'मेरा' पर ध्यान ही नहीं देना चाहिये, यह सम्पूर्ण संसार मेरा ही है, मैं ही एक दूसरी रीति से संसार के सम्पूर्ण आनन्द का भोग कर रहा हूँ। मेरा या इस संसार का विनाश भी कौन कर सकता है? इस तरह अद्वैतवाद ही नैतिक तत्त्वों की एकमात्र व्याख्या है। अन्य वाद तुम्हें नैतिकता की शिक्षा दे सकते हैं, पर हम क्यों नीतिपरायण हों, इसका हेतु नहीं बता सकते।[२४]

व्यक्ति तथा खण्डित जीवों के रूप में हम अपना स्वरूप भूल जाते हैं। अत: अद्वैतवाद हमें भेद को त्यागने की शिक्षा नहीं देता, वरन् उसके रूप को समझ लेने को कहता है। हम वस्तुत: वही अनन्त पुरुष हैं, हमारे व्यक्तित्व जल की उन धाराओं के सदृश हैं, जिनमें वह अनन्त सत्ता अपने को अभिव्यक्त कर रही है; और यह समग्र परिवर्तन-समष्टि, जिसे हम 'विकासवाद' कहते हैं, अपनी अनन्त शक्ति को व्यक्त करने में सचेष्ट आत्मा के द्वारा सम्पादित होती है। किन्तु हम अनन्त के इस पार कहीं रुक नहीं सकते, हमारे आनन्द और ज्ञान एवं शक्ति को अनन्त होना ही है। अनन्त सत्ता, अनन्त शक्ति, अनन्त आनन्द हमारे हैं। हम लोगों को उन्हें उपार्जित नहीं करना है, वे सब हममें हैं, हमें तो उन्हें केवल प्रकट मात्र करना है। अद्वैतवाद का यही केन्द्रीय भाव है।[२५]

जगत् को जानने का साहस करनेवाला कोई भी व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता कि जीवन और जगत् दोषमय हैं। किन्तु संसार के समस्त धर्म इसका क्या प्रतिकार बताते हैं? वे कहते हैं कि यह संसार कुछ नहीं है, वास्तविक सत्य इस संसार के बाहर है। यहीं से कठिनाई शुरू होती है। यह उपाय तो मानो हमें अपना सब कुछ नष्ट कर देने का उपदेश देता है।... तो क्या कोई उपाय नहीं है? वेदान्त कहता है – विभिन्न धर्म जो कुछ कहते हैं, सब सत्य है, पर इसका ठीक-ठीक अर्थ समझ लेना होगा।... वेदान्त वस्तुत: जगत् को नकारता नहीं है। भले ही वेदान्त में जैसे चूड़ान्त वैराग्य के उपदेश हैं, वैसे अन्यत्र कहीं भी नहीं हैं, पर इस वैराग्य का अर्थ शुष्क आत्महत्या नहीं है। वेदान्त में वैराग्य का अर्थ है, जगत् को ब्रह्म-रूप देखना – जगत् को हम जिस भाव से देखते हैं, उसे हम जैसा जानते हैं, वह हमें जैसा प्रतीत होता है, उसका त्याग करना और उसके सच्चे स्वरूप को पहचानना। उसे ब्रह्म-स्वरूप देखो – वास्तव में वह ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इसी कारण सबसे प्राचीन उपनिषद् में हम पाते हैं – **ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्** – जगत् में जो कुछ है, वह सब ईश्वर से आच्छन्न है। (ईश., १) सारे जगत् को ईश्वर से ढँक लेना होगा। यह किसी मिथ्या आशावादिता से नहीं, जगत् के दोषों तथा दु:ख-कष्ट के प्रति आँखें मूँदकर नहीं, वरन् वास्तविक रूप से हर वस्तु के भीतर ईश्वर का दर्शन करना होगा। इसी प्रकार हमें संसार का त्याग करना होगा; और जब संसार का त्याग हो गया, तो शेष क्या रहा? ईश्वर। इसका क्या तात्पर्य है? यही कि तुम्हारी स्त्री रहे, उससे कोई हानि नहीं, उसको छोड़ना नहीं होगा, वरन् स्त्री में तुम्हें ईश्वर-दर्शन करना होगा। सन्तान का त्याग करो, इसका अर्थ क्या यह है कि बाल-बच्चों को रास्ते में फेंक देना होगा, जैसा कि हर देश में कुछ नर-पशु करते हैं? कदापि नहीं! वह धर्म नहीं – वह तो पैशाचिक कार्य है। तो फिर क्या करें? उनमें और इसी प्रकार सभी वस्तुओं में ईश्वर का दर्शन करो। जीवन में, मरण में, सुख में, दुख में – सभी अवस्थाओं में ईश्वर समान रूप से विद्यमान है। केवल आँखें खोलकर उसके दर्शन करो। ... आँखें खोलकर देखो कि अब तक तुम जगत् को जैसा देख रहे थे, वैसा वह कभी नहीं था – वह स्वप्न था, माया थी। थे तो एकमात्र प्रभु। वे ही सन्तान में, वे ही स्त्री में, वे ही पति में, वे ही अच्छे में, वे ही बुरे में, वे ही पाप में, वे ही पापी में, वे ही जीवन में और वे ही मरण में विद्यमान हैं।[२६]

राजयोग – मन:संयम का मार्ग

हमारा उद्देश्य है – प्रकृति के पंजे से छुटकारा पाना। यही सारे धर्मों का एकमात्र लक्ष्य है।... योगी मन:संयम के द्वारा इस परम लक्ष्य तक पहुँचने की चेष्टा करते हैं। जब तक हम प्रकृति के हाथ से अपना उद्धार नहीं कर लेते, तब तक हम गुलाम हैं; वह जैसा कहती है, हम वैसे ही चलने को विवश हैं। योगी दावा करते हैं कि मन को वशीभूत कर लेनेवाला व्यक्ति पदार्थ को भी वशीभूत कर लेता है। आन्तरिक प्रकृति बाह्य प्रकृति की अपेक्षा उच्चतर है और उस पर अधिकार प्राप्त करना बड़ा कठिन है। इसीलिये जो व्यक्ति आन्तरिक प्रकृति को वशीभूत कर सकता है, सारा जगत् उनके वशीभूत हो जाता है – उनका दास हो जाता है। प्रकृति को इस प्रकार वश में लाने का उपाय ही राजयोग है।[२७]

राजयोग-विद्या पहले मनुष्य को उसकी अपनी आन्तरिक अवस्थाओं के निरीक्षण का उपाय दे देती है। मन ही उस निरीक्षण का यंत्र है।... यहाँ विषय अन्दर की वस्तु है – मन ही विषय है; मन का अध्ययन करना ही यहाँ उद्देश्य है और मन ही मन का अध्येता है। हम मन की एक ऐसी शक्ति के बारे में जानते हैं, जिसे मनन कहते हैं।... तुम एक साथ ही कर्म और चिन्तन दोनों कर रहे हो, परन्तु तुम्हारे मन का एक अंश मानो बाहर खड़े होकर, तुम जो चिन्तन कर रहे हो, उसे देख रहा है। मन की सारी शक्तियों को एकत्र करके मन पर ही उनका प्रयोग करना होगा। जैसे सूर्य की तीक्ष्ण किरणों के समक्ष घने अन्धकारमय स्थान भी अपने गुप्त तथ्य खोल देते हैं, वैसे ही यह एकाग्र मन अपने सब आन्तरिक रहस्य प्रकट कर देगा।... राजयोग हमें यही शिक्षा देता है। इसमें जितने उपदेश हैं, उन सबका उद्देश्य प्रथमत: मन की एकाग्रता का साधन है, इसके बाद – उसके गम्भीरतम प्रदेश में कितने प्रकार के भिन्न-भिन्न कार्य हो रहे हैं, उनका ज्ञान प्राप्त करना और तत्पश्चात् उनसे सामान्य सत्यों को निकालकर उनसे अपने एक सिद्धान्त पर पहुँचना है।[२८]

मनुष्य यदि स्वयं को कामुक बोध करता है, तो उसका सारा धर्मभाव चला जाता है; चरित्र-बल और मानसिक तेज नष्ट हो जाता है। इसीलिये संसार में जिन सम्प्रदायों में बड़े-बड़े धर्मवीर पैदा हुए हैं, उन सभी ने ब्रह्मचर्य पर विशेष जोर दिया है। इसीलिये विवाह-त्यागी संन्यासी-दल की उत्पत्ति हुई। इस ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से – तन-मन-वचन से – पालन नितान्त आवश्यक है। ब्रह्मचर्य के बिना राजयोग की साधना बड़े खतरे की है, क्योंकि उससे विषम मानसिक विकार पैदा हो सकता है। यदि कोई राजयोग का अभ्यास करे और साथ ही अपवित्र जीवन बिताये, तो वह योगी होने की आशा भला कैसे कर सकता है?[२९]

❖ (क्रमश:) ❖

सन्दर्भ-सूची –

२३ख. विवेकानन्द साहित्य, (सं. १९८९), खण्ड ८, पृ. ५९-६० **२४**. वही, खण्ड ५, पृ. ३१५-१६; **२५**. वही, खण्ड ८, पृ. ४६-४७; **२६**. वही, खण्ड २, पृ. १४८; **२७**. वही, खण्ड १, पृ. १७३; **२८**. वही, खण्ड १, पृ. ३९-४१; **२९**. वही, खण्ड १, पृ. ८२

नाम की महिमा (१/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९८७ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'नाम-रामायण' पर जो प्रवचन हुए थे, उन्हें 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य किया है श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी ने। – सं.)

राम एक तापस तिय तारी ।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी ।।

– श्रीराम ने तो केवल एक तपस्वी स्त्री का उद्धार किया, परन्तु उनके नाम ने करोड़ों दुष्ट बुद्धिवालों को सुधार दिया।

रिषि हित राम सुकेतुसुता की ।
सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी ।।
सहित दोष दुख दास दुरासा ।
दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा ।।

– श्रीराम ने तो ऋषि विश्वामित्र के हितार्थ, सेना तथा पुत्र सुबाहु सहित सुकेतु-कन्या ताड़का का वध किया, परन्तु उनके नाम ने अपने भक्तों के दोषों, दु:खों तथा दुराशाओं का वैसे ही नाश कर दिया जैसे सूर्य रात्रि का।

भंजेउ राम आपु भव चापू ।
भव भय भंजन नाम प्रतापू ।।

– स्वयं श्रीराम ने तो भव अर्थात् शिवजी के धनुष को तोड़ दिया, परन्तु उनके नाम का प्रताप भव अर्थात् संसार के समस्त भयों का नाश करने वाला है।

दंडक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन ।
जन मन अमित नाम किए पावन ।।

– श्रीराम ने तो एक दण्डक वन को ही सुहावना बना दिया, परन्तु उनके नाम ने असंख्य लोगों के मन को पवित्र बनाया।

निसिचर निकर दले रघुनन्दन ।
नामु सकल कलि कलुष निकंदन ।।१/२४/३-८

– श्रीराम ने तो राक्षसों के समूह को नष्ट किया, परन्तु उनका नाम कलियुग के सारे पापों का नाश करनेवाला है।

सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ ।। १/२४

– श्रीराम ने तो शबरी, गीध आदि उत्तम भक्तों को ही मुक्ति दी, परन्तु उनके नाम ने असंख्य पापियों का उद्धार किया। उनके नाम के गुणों की गाथा वेदों में भी प्रसिद्ध है।

जानकी-जीवन श्रीरामचन्द्र की महती अनुकम्पा से इस वर्ष पुन: भगवान रामकृष्णदेव और स्वामी विवेकानन्दजी के जयन्ती के इस पावन उत्सव में सम्मिलित होने का सुअवसर मिला। आदरणीय स्वामीजी महाराज प्रति वर्ष बड़े ही स्नेहपूर्वक स्मरण करते हैं और इस पावन भूमि में आकर – जहाँ पर एक दिव्य यज्ञ, कर्मयज्ञ और ज्ञानयज्ञ – दोनों ही चल रहे हैं, मुझे विशेष सन्तोष की अनुभूति होती है।

नाम-रामायण की उपरोक्त पंक्तियों पर एक दृष्टि डालें। 'मानस' में एक ही साध्य तत्त्व को पाने के लिये विविध प्रकार की साधनाओं का वर्णन किया गया है। गोस्वामीजी का निश्चित मत रहा है कि सभी साधनाएँ भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिये उपयोगी हैं। भगवान श्रीरामकृष्ण ने अपने जीवन में विविध धर्मों तथा साधनाओं के माध्यम से इसी सत्य को प्रगट किया और इसी तथ्य की पुष्टि की।

गोस्वामीजी से पूछा गया – ज्ञान, भक्ति, कर्म आदि जिन मार्गों का उपदेश दिया जाता है, आपकी दृष्टि में इनमें से कौन-सा मार्ग ठीक है? गोस्वामीजी ने विनय-पत्रिका में कहा – जिन मार्गों का वर्णन किया गया है, वे सभी सत्य हैं – **झूठ कोउ नाहीं**। फिर पूछा गया – यदि सभी मार्ग सत्य हैं, तो व्यक्ति किस मार्ग का आश्रय ले? यदि कल्याण का एक ही मार्ग बता दिया जाय, तो व्यक्ति के लिये समस्याएँ कम हो जाएँगी। अनेक मार्गों के वर्णन तथा उनकी सत्यता के प्रतिपादन से एक समस्या उत्पन्न हो सकती है। इससे कभी-कभी व्यक्ति स्वयं यह निर्णय कर पाने में असमर्थता का बोध करता है कि वह किस साधना-पद्धति का आश्रय ले। यही स्थिति गीता में भगवान के उपदेश सुनते हुए अर्जुन के मन में आई थी। वहाँ भगवान ने सभी योगों का प्रतिपादन किया, तो अर्जुन के मन में एक उलझन उत्पन्न हुई और उसे व्यक्त करते हुए वे भगवान से कहते हैं – आप मिले-जुले वाक्य कहकर, साधना-पद्धतियों का, दर्शनों का वर्णन करके मेरे मन में एक प्रकार की भ्रान्ति की सृष्टि कर रहे हैं, आप कृपा करके निश्चित रूप से बताइए कि मेरे लिये उपयुक्त क्या है –

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।। ३/२

वस्तुत: भगवान विविध योगों का उपदेश भी देते हैं और अर्जुन द्वारा एक निश्चित मार्ग का संकेत माँगने पर उनको शरणागति की प्रेरणा भी देते हैं। यदि एक ही मार्ग की श्रेष्ठता प्रतिपादित की जाय, तो कभी-कभी दुराग्रह आ जाता है। और यदि सभी मार्गों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन हो, तो

व्यक्ति के मन में भ्रान्ति पैदा होती है। अत: समस्या दोनों ही तरह से है, मगर गोस्वामीजी से जब पूछा गया, तो उन्होंने दो बातें कहीं। एक सूत्र देते हुए उन्होंने कहा – जिसके अन्त:करण में जिस साधना-पद्धति में विश्वास और प्रीति हो, उस व्यक्ति को उसी मार्ग के द्वारा सिद्धि प्राप्त होती है –

प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी
तहँ ताको काज सरो ।। वि. प., २२६-५

इस प्रकार उन्होंने साधना में सिद्धि के लिये अन्ततोगत्वा साधक की प्रीति तथा उसके विश्वास को बड़े महत्त्व का तत्त्व माना। उसी के माध्यम से व्यक्ति किसी भी मार्ग पर चलकर सिद्धि पा सकता है। श्रीराम-चरित-मानस समन्वय का ग्रन्थ है और उसमें सभी साधना-पद्धतियों का वर्णन है। व्यक्ति विवेक में तो निष्पक्ष हो सकता है, परन्तु हृदय से निष्पक्ष नहीं हो सकता। हम बुद्धि के द्वारा सभी साधनों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन तो कर सकते हैं, पर हमारे हृदय में किसी-न-किसी साधना-पद्धति के प्रति आग्रह तथा पक्षपात होता है और होना भी चाहिये। यही सूत्र 'मानस' के अन्त में काग-भुशुण्डिजी और गरुड़ के संवाद में आता है। काग-भुशुण्डिजी पक्षी है और वे भक्तिमार्ग के पक्षपाती हैं, परन्तु गरुड़जी जब उनसे ज्ञान और भक्ति का भेद पूछते हैं, तब वे एक बात कह देते हैं – अब आप यदि इस विषय में जिज्ञासा कर रहे हैं, तो मैं निष्पक्ष होकर ही इसका निरूपण कर रहा हूँ –

इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ ।। ७/११६/१

जहाँ तक बौद्धिक जिज्ञासा का प्रश्न है, वहाँ पर निष्पक्षता की आवश्यकता है, पर जहाँ पर किसी विशेष साधना-पद्धति को जीवन में क्रियान्वित करने का सम्बन्ध है, वहाँ किसी-न-किसी पद्धति में पक्षपात होता है, और होना भी चाहिये।

यदि पूछा जाय कि गोस्वामीजी ने किस साधना-पद्धति के द्वारा अपने जीवन में धन्यता और पूर्णता प्राप्त की, तो इसका उत्तर आपको 'मानस' या 'विनय-पत्रिका' में यही मिलेगा कि उनके जीवन में धन्यता और पूर्णता प्राप्ति के दो सूत्र हैं – भगवन्नाम की साधना और भगवान की कृपा। गोस्वामीजी के सभी ग्रन्थों में, आदि से लेकर अन्त तक जीवन की अनुभूति का यही पक्ष मिलता है। 'विनय-पत्रिका' में उन्होंने यह बात शपथ लेकर कही; क्योंकि जैसा कि स्वाभाविक था, गोस्वामीजी को प्राप्त महान् सिद्धि को देखकर लोगों के मन में जिज्ञासा होती थी कि उन्हें अपने जीवन में यह सिद्धि या पूर्णता कैसे प्राप्त हुई? जब वे इसका रहस्य प्रगट करते हैं, तो कई बार सुननेवाले को विश्वास नहीं होता। जब वे कहते हैं कि मेरे जीवन की सारी सफलता का रहस्य दो अक्षरों के 'राम'-नाम में है, तो 'राम'-नाम शब्द सुनकर व्यक्ति प्रभावित नहीं होता, क्योंकि उन लोगों का अनुमान था कि गोस्वामीजी ने किसी जटिल पद्धति से बड़ा कठिन प्रयास करके, अनेक कठिन साधनाओं के पश्चात् सफलता प्राप्त की होगी। इसलिये लोग अविश्वास भरे शब्दों में कहते थे कि आप शायद अपनी साधना-पद्धति को छिपाना चाहते हैं, स्पष्ट क्यों नहीं बताते? गोस्वामीजी ऐसे लोगों को विश्वास दिलाने के लिये कहते हैं – मैं भगवान शंकरजी की शपथ लेकर कहता हूँ कि यदि मैंने कुछ भी छिपाने की चेष्टा की हो, तो मेरी जिह्वा जलकर या गलकर गिर जाय –

संकर साखि जो राखि कहौं, कछु तौ जरि जीह गरो ।
अपनो भलो राम नामहि ते, तुलसिहि समुझि परो ।।
(वि.प., २२६/६)

उनका वह सूत्र है – मुझे अपने जीवन में धन्यता एकमात्र रामनाम के द्वारा ही प्राप्त हुई है। यही मेरे जीवन की अनुभूति है। जैसा कि स्वाभाविक है, व्यक्ति ने जिस मार्ग या साधना-पद्धति के द्वारा धन्यता प्राप्त की हो, वह दूसरों के समक्ष भी अपनी अनुभूति को रखने की चेष्टा करता है और चाहता है कि अन्य लोग भी उस मार्ग या पद्धति का आश्रय लेकर धन्य हों। इस दृष्टि से गोस्वामीजी की जो स्वयं की साधना-पद्धति है, उसमें भगवान के नाम की महिमा को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है।

आपके सामने जो कुछ चुनी हुई पक्तियाँ पढ़ी गईं, उन आठ दोहों (१/१९-२७) में गोस्वामीजी ने भगवान के नाम की वन्दना की है और यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि संसार में ऐसी कोई भी साधना-पद्धति नहीं है, जिसमें नाम की आवश्यकता न हो। नाम के सन्दर्भ में उन्होंने एक विशेष बात यह कही कि कभी-कभी हो सकता है कि एक साधना-पद्धति में जिसकी आवश्यकता है, दूसरी साधना-पद्धति में उसकी आवश्यकता न हो। जैसे भगवान के रूप का ध्यान जो है, वह सगुण-साकार के भक्त-साधकों के लिये उपयोगी है, परन्तु निर्गुण-निराकारवादी उपासक रूप की साधना में विश्वास नहीं करते। उनके लिये रूप की साधना उपयोगी नहीं है। ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जो एक साधना में उपयोगी हैं और दूसरे में नहीं। परन्तु नाम-साधना की विशेषता यह है कि वह स्वतंत्र रूप से भी उपयोगी है और कोई ऐसी भी साधना-पद्धति हो सकती है, जिसमें नाम अनिवार्य हो। यह बात उन्होंने कई पद्धतियों से स्पष्ट करने की चेष्टा की है।

गोस्वामीजी ने नाम-वन्दना की पहली दो पक्तियों में सब से पहला सूत्र दिया। रूप सगुण साकार साधना से जुड़ा हुआ है। यह नाम रूप है या अरूप? नाम सगुण है या निर्गुण? गोस्वामीजी ने दो बातें कहीं। एक तो आगे चलकर उन्होंने यह आग्रह किया कि नाम तो निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार – दोनों की अपेक्षा महत्त्वपूर्ण है। पर उसके पहले जो उन्होंने नाम-वन्दना का श्रीगणेश करते हुए कहा कि नाम अगुण भी है और सगुण भी।

बंदउँ नाम राम रघुबर को ।
हेतु कृसानु भानु हिमकर को ।।
बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो ।
अगुन अनूपम गुन निधान सो ।। १/१९/१-२

– मैं रघुवीरजी के उस 'राम' नाम की वन्दना करता हूँ, जो अग्नि-सूर्य तथा चन्द्रमा का हेतु या मूल कारण है; जो ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का रूप है; जो वेदों का प्राण है; जो निर्गुण, अनुपम तथा गुणों का आगार है।

वह अगुण भी है और समस्त गुणों का केन्द्र भी है, ऐसा दिव्य नाम है। इस प्रकार उन्होंने इतने दृष्टान्तों के द्वारा, इतने विविध रूपों में राम-नाम की महिमा को प्रस्तुत किया है कि उन्हें ऐसा लगता है कि कोई एक साधना-पद्धति वाला दूसरी साधना-पद्धति की भले ही उपेक्षा करे, पर ऐसा कोई साधक नहीं हो सकता, जिसके जीवन में भगवन्नाम की अपेक्षा न हो। गोस्वामीजी ने तो भगवन्नाम की महिमा का वर्णन किया ही है, हमारी सारी शास्त्रीय परम्परा तथा सन्त-परम्परा में भी भगवन्नाम की महिमा का अद्भुत प्रतिपादन किया गया है। प्रतिपादन तो हुआ है, परन्तु क्या हम सबके जीवन में इस नाम-महिमा की अनुभूति हो रही है? यदि नहीं हो रही है, तो क्या हम यह मानकर चले कि जो कुछ लिखा गया है, वह यथार्थ नहीं है; या महिमा का वर्णन करने में अतिवाद का प्रयोग किया गया है। यदि ऐसा न मानें, तो यह प्रश्न शेष रह जाना स्वाभाविक है कि भगवन्नाम की महिमा का इतना वर्णन किये जाने पर भी, यदि उस महिमा का प्राकट्य हमारे जीवन में नहीं होता, तो क्यों नहीं होता।

गोस्वामीजी ने एक सूत्र दिया। पहले उसी पर विचार करें। गोस्वामीजी नाम की तुलना एक रत्न से करते हैं। मान लीजिए मार्ग में जाते हुए आपको एक हीरा पड़ा हुआ मिल जाय। यह हीरा हमारे दुःख का निवारण कर सकता है या नहीं? यदि हीरे को हम जेब में रख लें, तो क्या उससे हमारी प्यास बुझेगी? भूख मिटेगी? क्या हमारे शीत का निवारण होगा? – कुछ नहीं होगा। रत्न के होते हुए भी हमारी समस्याएँ ज्यों-की-त्यों बनी रहेंगी। समस्या को दूर करने के लिये एक क्रम है। **पहले तो हमें रत्न के रत्नत्व का बोध हो।** एक टुकड़ा हमारे सामने पड़ा है। वह क्या है? काँच का टुकड़ा और हीरे का टुकड़ा – देखने में एक ही जैसे हैं। यदि हमने उसे काँच के रूप में स्वीकार किया है, तब तो हमारी दरिद्रता के निवारण का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। पर यदि हमने उसको हीरे के रूप में पाया है, तो पहले हमें यह समझना है कि यह वस्तुतः है क्या – हीरा या काँच? उसे हीरा जान लेने के बाद भी तत्काल समस्याओं का समाधान नहीं होगा। उस हीरे को लेकर हम जौहरी के पास जाते हैं और उससे हम उस रत्न के मूल्य का ज्ञान प्राप्त करते हैं। पहले रत्न का ज्ञान प्राप्त हुआ और मूल्य का ज्ञान प्राप्त होने के बाद यदि हम अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त करना चाहते हैं, तो **उस रत्न को मूल्य के रूप में परिणत करना होगा।** उस रत्न को देकर उसके बदले में जब हम धन प्राप्त करेंगे और धन के द्वारा जब हम विविध प्रकार की वस्तुओं को खरीदकर ले आयेंगे, तभी कुछ होगा। वैसे यदि हम कहें कि हीरे में मकान भी छिपा है, हीरे में वस्त्र भी छिपा है, हीरे में आभूषण भी छिपा हुआ है, तो बात सत्य है। परन्तु रत्न को जब तक हम मूल्य के रूप में परिणत नहीं कर लेते, तब तक वस्तुतः रत्न का सच्चा लाभ प्राप्त नहीं होगा।

नाम भी वस्तुतः एक रत्न है, पर अधिकांश लोगों के लिये तो नाम एक शब्द मात्र है। यदि हम नाम को एक साधारण शब्द समझते हैं, तो फिर हमारी दृष्टि में वह काँच का एक टुकड़ा है, क्योंकि देखने में हीरे और काँच के टुकड़े में बड़ी समानता है। 'रा' और 'म' दो अक्षर ही तो हैं। वर्णमाला में अनेक अक्षर हैं, उन्हीं में से ये 'रा' और 'म' भी है। यदि हम ऐसे मानते हैं तो ठीक है। हम उसका शब्द के रूप में प्रयोग करें और उससे जो लाभ हो सकता है वह लें।

परन्तु गोस्वामीजी ने नाम-साधना के लिये दो वाक्य कहे – नाम का निरूपण कीजिये और नाम का यत्न कीजिये – निरूपण और यत्न के द्वारा जैसे रत्न से मूल्य प्रगट होता है, उसी प्रकार 'राम'-नाम से दिव्यता का प्राकट्य होगा –

नाम निरूपन नाम जतन तें ।
सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें ।। १/२३/४

पहले नाम-निरूपण के तत्त्व पर दृष्टि डालते हैं। पहला सूत्र तो यह है कि गोस्वामीजी ने राम-नाम की तुलना तीन अवतारों से की है। पहले तो उन्होंने यह कहा कि यह राम-नाम नृसिंह भगवान हैं। फिर उन्होंने कहा कि यह राम-नाम कृष्ण और बलराम हैं। इसके बाद उन्होंने कहा कि राम-नाम राम और लक्ष्मण हैं। ये तीनों अवतार तीन युगों से जुड़े हुए हैं। नृसिंह भगवान का अवतार सतयुग में होता है, भगवान राम का अवतार त्रेतायुग में होता है और श्रीकृष्ण के रूप में उनका जन्म द्वापरयुग में होता है। गोस्वामीजी ने कहा कि राम-नाम ही नृसिंह हैं, राम-नाम ही कृष्ण और बलराम हैं, राम-नाम ही राम और लक्ष्मण हैं। तो पहले उन्होंने कहा कि भगवान का नाम भगवान नृसिंह है –

राम नाम नरकेसरी
कनक-कसिपु कलिकाल ।
जापक जन प्रहलाद जिमि
पालहि दलि सुरसाल ।। १/२७

यह बड़े महत्त्व का सूत्र है। भगवान नृसिंह की महिमा को प्रगट करनेवाला कोई साधक चाहिये या नहीं? वर्णन आता है कि हिरण्यकशिपु ने जिस समय संसार पर शासन

शुरू किया, तब संसार में ऐसा कोई व्यक्ति था ही नहीं, जो उसके शासन को स्वीकार न करता हो। नारदजी ने तो एक ऐसी बात कह दी कि पढ़कर कोई व्यक्ति चौंके बिना नहीं रहता। उन्होंने कहा कि वह जब शासन करता था, तो संसार में ऐसा कोई व्यक्ति ही नहीं था, जो उसके गुण न गाता हो। और कहा – मैं भी उनमें से एक हूँ। उन्होंने यह एक बड़ी विचित्र बात कही। वस्तुत: उसने अपनी साधना तथा तपस्या के द्वारा अद्‌भुत सफलताएँ प्राप्त कर ली थी और उसका सम्पूर्ण प्रकृति पर अधिकार हो गया था। सारी प्रकृति को वह अपनी इच्छानुसार चलाने में सक्षम था। स्वाभाविक है कि उसकी उस दिव्यता के सामने सभी को नमन करना पड़ता था। गोस्वामीजी मानो एक संकेत-सूत्र देना चाहते हैं कि वस्तुत: यह जो हिरण्यकशिपु है, वह आज भी समाज में विद्यमान है। इस हिरण्यकशिपु के सामने प्रत्येक व्यक्ति झुका हुआ है। वह हिरण्यकशिपु कौन है? तो उन्होंने कहा – **कनक-कसिपु कलिकाल** – जिस युग में हम रह रहे हैं, यह कलियुग स्वयं हिरण्यकशिपु है। यह एक बहुत बड़ा सत्य है। जैसे व्यक्ति चाहे जितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, तीव्र आँधी के झोंके से किसी-न-किसी रूप में प्रभावित होता ही है। उसी प्रकार काल भी बड़ा शक्तिशाली है और व्यक्ति – देश और काल से जुड़ा हुआ है। देश स्वयं ही काल द्वारा धारण किया हुआ है, काल के द्वारा संचालित है। काल का प्रवाह ऋतुओं के परिवर्तन के समान है। ऋतुओं के परिवर्तन में उसका प्रभाव भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के ऊपर कुछ अन्तर से पड़ता है, पर पड़ता अवश्य है। वैसे ही गोस्वामीजी कहते हैं कि जिस युग में हम रहे हैं, वह इतना शक्तिशाली है, इतना सक्षम है कि कोई भी व्यक्ति उस युग के समक्ष बिना सिर झुकाये नहीं रह सकता। तात्पर्य यह कि साधारण-से-साधारण व्यक्ति से लेकर श्रेष्ठतम व्यक्ति भी कहीं-न-कहीं युगधर्म से आक्रान्त है। श्रीमद्-भागवत में भी यही संकेत दिया गया है।

परीक्षित ने कलिकाल का अत्याचार देखकर निश्चय किया कि वे उसका वध करके मिटा देंगे। यह एक बड़ी सांकेतिक प्रतीकात्मक कथा है। वे कलिकाल को मारने के लिये तैयार हुए। लेकिन कलियुग के पास सभी कलाएँ हैं, वह बातें बनाने की कला में बड़ा निपुण था और उसने परीक्षित के सामने अपनी बात इतने अच्छे ढंग से रखी कि उन्हें लगा कि इसे मारने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने उसे सीमित और मर्यादित बनाने की चेष्टा की। कहा – ''ठीक है, तुम रहोगे, लेकिन कुछ गिनी-चुनी वस्तुओं में ही रहोगे, सर्वत्र नहीं।'' उन्होंने उसके रहने के लिये वे दो-चार गिने-चुने स्थान बता दिये। परन्तु युग की विडम्बना यह है कि कलियुग ने सबसे पहले स्वयं परीक्षित को ही प्रभावित किया। क्योंकि उन्होंने कलियुग के रहने के लिये जो स्थान बताये, उनमें एक स्थान सोना था। और जब उन्होंने स्वर्ण-मुकुट धारण किया, तो कलियुग उस स्वर्ण-मुकुट पर बैठ गया। इसमें संकेत यह है कि जो लोग युग पर विजय प्राप्त करने में सक्षम हैं, जो युगधर्म को मिटा देने के लिये प्रस्तुत दिखाई देते हैं, उन्हें भी युग की कला के सामने पराजित हो जाना पड़ता है।

इसके बाद परीक्षित स्वयं ही सत्ता-मद से उन्मत्त हो जाते हैं और ऋषि को ध्यान करते हुये देखकर यही मान लेते हैं कि ये दम्भ किये हुए बैठे हैं, मुझे देखकर इन्हें मेरा स्वागत करना चाहिये था, मैं प्यासा हूँ, जल पिलाना चाहिये था। इसकी परिणति के रूप में वे मरे हुये सर्प को ऋषि के गले में डाल देते हैं। **यह सर्प काल का प्रतीक है।** इसका अभिप्राय यह है कि जब व्यक्ति सत्ता के मद में उन्मत्त होता है, जब वह युगधर्म से प्रभावित हो जाता है, तो उसे सर्प मरा हुआ प्रतीत होता है। उसे लगता है कि काल कुछ है ही नहीं, काल हमारे वश में है और काल को हमने मार डाला है। वे ऋषि के गले में वह सर्प लपेट देता है। बाद में जब ऋषिपुत्र को पता चलता है कि परीक्षित ने मेरे पिता के गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया है, तो क्रोध में आकर शाप दे देते हैं कि वह सर्प सातवें दिन परीक्षित को डसेगा।

इस कथा का तत्त्व यही है कि वस्तुत: काल सक्षम है और बुरे व्यक्तियों को काल द्वारा प्रभावित होना स्वाभाविक है, परन्तु अच्छे-से-अच्छे व्यक्ति भी उससे प्रभावित हो जाते है। इसमें एक बड़ा सार्थक संकेत है। दो सूत्र हैं। परीक्षित को मृत्यु का ज्ञान हो जाने के बाद दोनों ही पक्ष हो सकते थे, एक वर्णन महाभारत में आता है और दूसरे का श्रीमद्-भागवत में। महाभारत में आता है कि परीक्षित ने शुकदेवजी से श्रीमद् भागवत की कथा सुनी। इतिहास का एक पक्ष वह है जो सर्वथा मानवीय है कि मनुष्य काल और मृत्यु से बचना चाहता है और दूसरा आध्यात्मिक पक्ष यह है कि यदि हमारे जीवन में काल का भय उपस्थित हो जाय, तो हम अपने बचे हुए समय का सर्वश्रेष्ठ उपयोग करें और परीक्षित ने सात दिनों का सदुपयोग भगवान की कथा सुनने में किया। इससे मृत्यु तो नहीं रुकी। उन्हें सर्प ने डसा, परन्तु कथा-श्रवण के

द्वारा उन्होंने मृत्यु के भय को जीत लिया था और इस प्रकार श्रीमद्-भागवत में भगवान की कथा के माध्यम से हम युग की समस्या का समाधान कर सकते हैं। यह एक सूत्र दिया गया। 'मानस' में भी भगवान की कथा को महत्त्व देते हुए मृत्यु के सन्दर्भ में कहा गया है – इस कलिकाल में योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत, पूजन आदि दूसरे साधन नहीं हैं; इस युग में तो निरन्तर श्रीराम का स्मरण, श्रीराम की कथा का गान तथा उनके गुणगान का श्रवण करते रहना चाहिये –

एहिं कलिकाल न साधन दूजा ।
जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा ।।
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि ।
संतत सुनिअ राम गुनग्रामहि ।। ७/१३०/५-६

यह कथा का तत्त्व है, जिसके माध्यम से गोस्वामीजी युग की समस्या का समाधान देते हैं। युग जिस प्रकार तथा जितने रूपों में हमें प्रभावित कर सकता है, हम उससे बचने में सक्षम नहीं हैं। तो फिर हमें क्या करना चाहिये? युग को अपरिहार्य मानकर यदि हम हथियार डाल दें, तो यह तो बड़े दुर्भाग्य की बात होगी। जैसे नित्य रात्रि आती है, अँधेरा होता है, पर यदि हम अँधियारे को अनिवार्य मानकर प्रकाश करना बन्द कर दें, तो इससे बढ़कर निष्क्रियता और मूर्खता का कोई कार्य नहीं होगा। काल कितना भी अपरिहार्य क्यों न हो, हमारा कर्तव्य यह है कि हम अपनी क्षमता के अनुसार काल की समस्या को मिटाने की चेष्टा करें।

गोस्वामीजी ने जो सूत्र दिया है, वहीं से विचार प्रारम्भ करें। वे कहते हैं – एक ओर हिरण्यकशिपु है, दूसरी ओर प्रह्लाद हैं और अन्त में नृसिंह भगवान आते हैं। गोस्वामीजी कहते हैं कि राम-नाम तो नृसिंह भगवान हैं, जप करनेवाले प्रह्लाद हैं और यह युग ही हिरण्यकशिपु है –

राम नाम नरकेसरी
कनक-कसिपु कलिकाल ।
जापक जन प्रहलाद जिमि
पालहिं दलि सुरसाल ।। १/२७

एक ओर हिरण्यकशिपु है, तो दूसरी ओर प्रह्लाद। एक ओर युग है, तो दूसरी ओर भगवान के नाम का आश्रय लेकर उसकी साधना करनेवाला। दोनों में एक ही क्रम दीख पड़ता है। प्रह्लाद की समस्याओं का तत्काल समाधान नहीं हो गया। जिस क्रम से प्रह्लाद के द्वारा स्तम्भ से भगवान नृसिंह का प्राकट्य हुआ और जैसे उन्होंने हिरण्यकशिपु का वध किया, उसी क्रम से अब हम इस कलिकाल पर भी दृष्टि डालें। आज का युग भी बड़ा सक्षम है। आज विज्ञान ने बड़ी उन्नति की है, अनेक चमत्कार दिखाये हैं, दूसरी ओर हिरण्य-कशिपु के जीवन में भी प्रत्यक्ष चमत्कार दिखाई देते हैं।

जब व्यक्ति में चमत्कार और क्षमता आती है, तो उसका वैसा दुष्परिणाम भी हो सकता है, जैसा कि हमें हिरण्यकशिपु के जीवन में दीख पड़ता है। मनुष्य जब यह देखता है कि ये विज्ञान के सारे आविष्कार हमने किये हैं, ये हमारी बुद्धि के चमत्कार हैं, तो उसके अन्त:करण में ईश्वर को अस्तित्व के विषय में अविश्वास उत्पन्न हो जाता है, या फिर उसे ईश्वर की आवश्यकता का कोई कारण ही नहीं दिखाई देता।

आज का सत्य भी यही है। विज्ञान के चमत्कारों के प्रकाश में व्यक्ति जब अपनी क्षमताओं पर दृष्टि डालता है, तो स्वाभाविक रूप से उसके मन में ईश्वर-विषयक अनास्था तथा अनस्तित्व की बात आती है और हिरण्यकशिपु के जीवन में भी यही सत्य दिखाई देता है। एक बड़ी अनोखी बात है। आपने कई लोगों के जीवन में पढ़ा होगा कि पहले वे ईश्वर को नहीं मानते थे, बाद में कोई चमत्कार हुआ और वे मानने लगे। कभी-कभी तो लोग किसी छोटी घटना से भी ईश्वर को मानने लग जाते हैं। आपने प्रह्लाद के चमत्कारों के विषय में पढ़ा होगा, परन्तु हिरण्यकशिपु इतना विलक्षण नास्तिक था कि वह प्रह्लाद के चमत्कारों से भी प्रभावित नहीं हुआ, उसने ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास नहीं किया।

इस युग में भी है अनास्था और व्यक्ति का पौरुष। व्यक्ति का पौरुष दैत्यवृत्ति है ! दैत्यवृत्ति की सबसे बड़ी विचित्रता यह है कि उसमें पुरुषार्थ की अद्भुत क्षमता है और वह कहीं भी भाग्य के भरोसे बैठने पर विश्वास नहीं करता। यह भी स्वाभाविक है कि जो व्यक्ति भाग्य का भरोसा करता है, उसमें उतनी सक्षम पुरुषार्थ की शक्ति नहीं आती, जितना भाग्य को अस्वीकार करनेवाले व्यक्ति में आती है। दैत्य में जो पुरुषार्थ है, अद्भुत क्षमतायें हैं, चमत्कार हैं; वे सब-के-सब हिरण्यकशिपु के जीवन में विद्यमान हैं। आज विज्ञान सारी प्रकृति नहीं, तो प्रकृति की बहुत-सी वस्तुओं पर विजयी दिखाई दे रहा है। पर हिरण्यकशिपु के प्रसंग में तो लिखा है कि प्रकृति का कोई ऐसा अंग ही नहीं था, जिस पर हिरण्यकशिपु का अधिकार न हो। परिणाम क्या हुआ? उसके जीवन में भी ईश्वर के अस्तित्व का प्रश्न आया।

हिरण्यकशिपु के जीवन में नास्तिकता कब आयी? जब उसे पता चला कि भगवान विष्णु ने वराह रूप धारण करके उसके भाई हिरण्याक्ष का वध कर दिया है। उसी समय से वह भगवान का प्रबल विरोधी बन गया। परन्तु भगवान ही जीवन देनेवाला है और वही जीवन लेनेवाला भी है। गीधराज, बालि तथा मारीच – इन तीन पात्रों के प्रसंग में रामायण में एक बड़ी सुन्दर बात आती है। गीधराज के प्रसंग में लगता है कि रावण मारनेवाला है और भगवान बचानेवाले हैं। वर्णन आता है कि रावण ने तलवार उठाकर गीधराज के पंख काट दिये। गीधराज भूमि पर गिर पड़े –

काटेसि पंख परा खग धरनी ।। ३/२९/२२

भगवान आते हैं और उन्हें गोद में उठा लेते हैं। गीधराज के सिर पर भगवान का कर-कमल है –

कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबिधाम मुख बिगत भई सब पीर।।३/३०

इसका अर्थ है कि रावण मारता है, पीड़ा देता है और भगवान बचाते हैं, पीड़ा मिटाते हैं। व्यक्ति के जीवन में यह स्वाभाविक धारणा है और इसका दृष्टान्त गीधराज के जीवन में है। समाचार-पत्रों में भी कभी-कभी निकलता है, बड़ा प्रचलित शीर्षक है – मारनेवाले से बचानेवाला बड़ा। तो मारनेवाला कोई एक है और बचानेवाला कोई अन्य।

दूसरा पात्र बालि है। बालि को मारनेवाला कौन है? – भगवान ! और बाद में उसके सिर पर हाथ रखकर कौन यह कहता है कि तुम जीवित रहो? – वे भी भगवान ही हैं।

गीध के प्रसंग को पढ़कर लगता है कि रावण मारता है और भगवान बचाते हैं। बालि के प्रसंग को पढ़कर लगता है कि वे ही मारते हैं और वे ही बचाते भी हैं। पर मारीच के जीवन में इससे भी अधिक कठिन परीक्षा थी। इस प्रसंग में ईश्वर बचानेवाले के रूप में नहीं, बल्कि मारनेवाले के रूप में हैं और मारीच जब भगवान की ओर जा रहा है, तो उसे यही लग रहा है कि आज मेरा वध होगा, लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि वह वध की कल्पना से भयभीत नहीं है। मृत्यु से व्यक्ति आतंकित होता है, पर मारीच इतना प्रसन्न था कि डर रहा था कि रावण उसकी प्रसन्नता को जान न ले। मारीच से कोई पूछे – तुम तो यह कहते भी जा रहे हो कि राम तुम्हें मारेंगे, तो फिर तुम इतने प्रसन्न क्यों हो रहे हो? तो उत्तर में मारीच पूछता है – भगवान जब किसी पर कृपा करते हैं, तो क्या करते हैं? गीधराज पर उन्होंने कृपा की, तो क्या किया? – **कर-सरोज सिर परसेउ** – अपने करकमल से उनके सिर का स्पर्श किया। भगवान जब किसी पर कृपा करते हैं तो उसके सिर पर हाथ रख देते हैं।

मारीच ने बड़ी सुन्दर बात कही – अरे भई, जिन हाथों से वे कृपा करते हैं, उन्हीं हाथों से तो मुझे मारेंगे ! और जब एक ही हाथ से दोनों काम हो रहा है, तो हम कैसे मान लें कि एक काम अच्छा है और एक बुरा। हमारा तो सूत्र यह है – अपने हाथ से बाण का सन्धान करेंगे –

निज पानि सर संधानि ... ।। ३/२६ (छं.)

मैं यह नहीं देखता कि मेरी मृत्यु हो रही है, इस ओर भी मेरी दृष्टि नहीं है कि मेरी मृत्यु बाण से हो रही है। मैं तो यह देख रहा हूँ कि बाण किसके द्वारा, किन हाथों के द्वारा चलाया जा रहा है। उनके हाथों द्वारा चलाया जा रहा है, तो हमारी मृत्यु भी परम मंगलमय होगी। मारीच की आस्था की यह कठिनतम परीक्षा थी।

ईश्वर बचानेवाला है – यह मानकर उसमें हमारी आस्था हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। ईश्वर मारनेवाला और बचानेवाला है – यह मानकर यदि हम भयभीत होकर ईश्वर को मानें, तो भी आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु मृत्यु में भी ईश्वर पर विश्वास और आस्था – यही मारीच की सर्वोच्च, सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। रामायण में एक महानतम प्रेमी के रूप में मारीच का वर्णन किया गया है।

हिरण्याक्ष को किसने मारा? इसका जो पौराणिक वर्णन है वह बड़ा सांकेतिक है। स्थूल रूप से तो भगवान ने वाराह रूप लेकर मारा। जब कोई मरता है, तो प्रश्न उठता है कि व्यक्ति कैसे मर गया? अन्त में यही तो कहेंगे कि ईश्वर ही मृत्यु का संचालक है और उसी ने व्यक्ति को मार दिया।

इस बात को सुनकर हिरण्यकशिपु के मन में क्या वृत्ति आती है? दैत्य तो पुरुषार्थ का पुँज होता है। इस बात को सुनकर वह भयभीत नहीं होता और भयभीत होकर वह भगवान का भक्त भी नहीं बनता। पुरुषार्थ बड़ा उपयोगी है, पर कभी-कभी वह व्यक्ति को बड़ी घातक दिशा में भी ले जाता है। यह एक बड़े महत्त्व का सूत्र है। ईश्वर को मृत्यु के कारण-रूप में देखकर भी उसके मन में भय नहीं उत्पन्न होता है। उल्टे क्या वृत्ति आती है? जिसने मेरे भाई को मारा, उसे मैं मार डालूँगा। पुरुषार्थ पर इससे बढ़कर किसी का विश्वास और क्या होगा ! यदि ईश्वर ने मिटा दिया, तो हम ईश्वर को मिटा देंगे। और वह ईश्वर को मिटाने के लिये सचमुच ही संसार में सर्वत्र – प्रकृति के सारे पदार्थों में खोजने लगा कि कहाँ है ईश्वर। आज भी विज्ञान खोज रहा है कि कहाँ है ईश्वर। यह खोज एक सतत चलनेवाली प्रक्रिया है। मनुष्य आज भी मृत्यु की समस्या का समाधान पाने के लिये व्यग्र है। औषधि का प्रयोग भी इसी समस्या के समाधान की एक पद्धति है, लेकिन जहाँ ईश्वर के अस्तित्व को ही मिटाने की वृत्ति आ जाय, तो वह बड़ा निर्भय अन्त:करण वाला दिखाई देता है और वह ईश्वर को खोजने चलता है।

❖ (क्रमश:) ❖

भागवत की कथाएँ (२१)

स्वामी अमलानन्द

(श्रीमद् भागवतम् पुराणों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। उसकी कथाओं ने युग-युग से मनुष्य को धर्म के प्रति आस्था-विश्वास दिया है जिससे भारतवासियों ने दृढ़ आत्म-विश्वास प्राप्त किया है। उन्हीं कथाओं में से लेखक ने कुछ का चयन करके सरल भाषा तथा संक्षेप में पुनर्लेखन किया है। 'विवेक-ज्योति' के लिये इस ग्रन्थ का सुललित अनुवाद किया है छपरा के डॉ. केदारनाथ लाभ, डी. लिट्. ने। – सं.)

भगवान की विभूतियाँ

(हम लोग जो कुछ देखते हैं वे सभी भगवान की विभूतियाँ या शक्तियाँ हैं। फिर यह भी कहा जा सकता है कि जहाँ शक्ति का विशेष प्राकट्य देखने में आता है, वह भगवान का ही विशेष प्रकाश है। यहाँ श्रीकृष्ण परम भक्त उद्धव को यही बात समझाते हैं।)

उद्धव ने जानना चाहा कि भगवान की विभूति कैसी होती है। उत्तर में श्रीकृष्ण बोले – "कुरुक्षेत्र में युद्ध के समय अर्जुन ने भी मुझसे ऐसा ही प्रश्न किया था। मैंने उस समय जो कहा था, अब मैं तुमसे भी वही कहता हूँ।

"मैं (भगवान) सभी प्राणियों का सखा, आत्मा और ईश्वर हूँ; सृष्टि, स्थिति और संहार का कारण भी मैं ही हूँ। गुण और गुणियों का मैं आदि कारण हूँ। मैं मंत्रों में ओंकार, छन्दों में गायत्री, देवों में इन्द्र, अष्ट-वसुओं में अग्नि, आदित्यों में विष्णु, महर्षियों में भृगु, राजर्षियों में मनु, देवर्षियों में नारद, सिद्धों में कपिल, पक्षियों में गरुड़, प्रजापतियों में दक्ष, दैत्यों में प्रह्लाद, नक्षत्रों में चन्द्रमा और यक्ष तथा राक्षसों के समाज में कुबेर हूँ।

"मैं हाथियों में ऐरावत, मनुष्यों में राजा, घोड़ों में उच्चैःश्रवा और धातुओं में सोना हूँ। पशुओं में मैं पशुराज सिंह, नदियों में गंगा, पर्वतों में हिमालय, वनस्पतियों में पीपल का वृक्ष, और व्रतों में मैं अहिंसा हूँ। प्राणियों के प्रति जो अभयदान-रूपी धर्म है, वह मैं ही हूँ। मैं ऋतुओं में वसन्त, महीनों में अगहन और चार युगों में सत्ययुग हूँ। भगवानों (विशिष्ट महापुरुषों) में मैं वासुदेव, भागवतों (भक्तों) में उद्धव, वानरों में हनुमान तथा विद्याधरों में मैं सुदर्शन हूँ।[१]

घृतों (हविष्यों) में मैं गाय का घी हूँ। मैं व्यापारियों की धन-सम्पदा, धूर्तों का छल-कपट, क्षमाशीलों की क्षमा तथा सात्विक व्यक्तियों का सत्वगुण हूँ। यह जान लेना कि मैं ही बलवानों का इन्द्रिय-बल और शारीरिक-बल हूँ, भगवद्-भक्तों में भक्तियुक्त पावन कर्म हूँ। भक्तों में मैं श्रेष्ठ भक्त हूँ। वीरों में मैं अर्जुन हूँ। जान लो कि पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज (अग्नि), जीव, प्रकृति, सत्व, रज, तम – ये सब मैं ही हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ। मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"

भगवान ने उद्धव को उपदेश दिया – वाणी और मन का संयम करो, प्राण और इन्द्रियों को संयत करो। ऐसा करने से संसार-पथ में पुनः आवागमन नहीं करना पड़ेगा।[२]

प्रश्नोत्तर

(उद्धव के प्रश्न और श्रीकृष्ण के उत्तर)

प्रश्न : यम और नियम किसे कहते हैं?

उत्तर : अहिंसा, सत्य, अस्तेय (दूसरे के धन के प्रति लोभ न करना), अनासक्ति, लज्जा (विनय), असंचय, आस्तिकता (गुरु और शास्त्र में विश्वास), ब्रह्मचर्य, मौन (व्यर्थ की बातें न बोलना), स्थिरता (धैर्य), क्षमा (दूसरे के अपराध को सहन करना) और अभय – ये बारह यम हैं।[३] दैहिक तथा मानसिक पवित्रता, मंत्रजप, तपस्या, यज्ञ का अनुष्ठान, श्रद्धा (धर्म के प्रति आदर-भाव), अतिथि-सेवा, अर्चना (पूजा आदि का अनुष्ठान), तीर्थ-भ्रमण, परोपकार की इच्छा, सन्तोष तथा आचार्य (गुरुजन) की सेवा – ये बारह नियम कहलाते हैं।

इन गुणों को अर्जित करने से, केवल धर्म-पथ के पथिक – त्यागीजन ही मोक्ष प्राप्त करेंगे, ऐसी बात नहीं; इनसे संसार-पथ के पथिक – सामान्य लोगों को भी संसार में उन्नति (अभ्युदय) की प्राप्ति होगी।[४]

---

१. वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेष्वहम्।
किम्पुरुषाणां हनुमान् विद्याध्राणां सुदर्शनः ॥ ११/१६/२९

२. वाचं यच्छ मनो यच्छ प्राणान् यच्छेन्द्रियाणि च।
आत्मानमात्मना यच्छ न भूयः कल्पसेऽध्वने॥ ११/१६/४२

३. अहिंसा सत्यमस्तेयमसङ्गो ह्रीरसञ्चयः।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम्॥ ११/१९/३३

४. शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धाऽऽतिथ्यं मदर्चनम्।
तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्य-सेवनम्॥ ११/१९/३४
एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः।
पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि॥ ११/१९/३५

प्रश्न : सच्चा सुख किसे कहते हैं? सच्चा दु:ख क्या है? कौन ज्ञानी और कौन मूर्ख है? स्वर्ग-नरक किसे कहते हैं? मित्र कौन है? धनी और दरिद्र किसे कहते हैं?

उत्तर : सुख और दु:ख – दोनों के परे जाना ही सच्चा सुख है। विषय-भोग की कामना ही वास्तविक दु:ख है। ज्ञानी वे हैं, जो बन्धन और मुक्ति का तत्त्व जानते हैं और मूर्ख वह है, जिसके लिए उसका शरीर ही सब कुछ है। सत्त्वगुण का उदय या प्राकट्य होने पर यह शरीर ही स्वर्ग बन जाता है और तमोगुण की वृद्धि या अधिकता होने पर शरीर ही नरक हो जाता है। भगवान या गुरु ही बन्धु या मित्र हैं; और कोई मित्र नहीं है। जो सद्गुणों से सम्पन्न हैं, वे ही धनी हैं और जो धन-सम्पदा पाकर भी उससे खुश नहीं हैं, असन्तोष का कष्ट पा रहे हैं, वे ही दरिद्र हैं।

उद्धव को श्रीकृष्ण का अन्तिम उपदेश

(भक्तियोग का सार-तत्त्व)

उद्धव ने कहा – प्रभो, आपने अब तक मुझे जो योग-विषयक उपदेश दिये हैं, लगता है कि वे साधारण मनुष्यों के लिए बड़े कठिन हैं। कृपा करके मुझे कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मनुष्य आसानी से मुक्ति प्राप्त कर सके।

उद्धव की बातों पर प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण बोले – "उद्धव ! जिस परम पवित्र भागवत धर्म का श्रद्धापूर्वक पालन करने से मनुष्य मृत्यु से भी अनायास ही मुक्ति पा सकता है, वह मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो – मेरा स्मरण कर समस्त कार्यों को शुरू करना तथा कर्म के फल मुझे अर्पित करना। साधुगण जिस प्रकार का आचरण करते हैं, वैसा ही आचरण करना। मेरे नाम पर अनुष्ठित होनेवाले महोत्सव को देखना। साधु-भक्त तथा महापुरुषों की जीवन-कथा पर चर्चा करना। इन सबके द्वारा जब मन की मलिनता मिट जायेगी, तब भक्त सभी प्राणियों में निवास करनेवाले मुझ (भगवान) को अपने हृदय में स्पष्ट रूप से अनुभव करेगा। तब वह समस्त जीवों में भी मुझे देख सकेगा। ब्राह्मण और अब्राह्मण, साधु और असाधु, सूर्य और आग की चिनगारी, अच्छा और बुरा – जो सबके प्रति समान दृष्टि रखते हैं, वे ही ज्ञानी हैं। जान लो कि सभी प्राणियों में ईश्वर की सत्ता का अनुभव करना ही मुझे प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

ईश्वर के श्रीचरणों में आत्म-निवेदन करना ही मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग है। ब्रह्मवाद का सार-तत्त्व मैंने तुम्हें बताया, इतना जान लेने पर जानने के लिए और कुछ बाकी नहीं रहा। जो व्यक्ति मेरे भक्तों में इस ज्ञान का वितरण करते हैं, वे मेरे परम प्रिय हैं। दम्भी, नास्तिक, दुष्ट या उद्धत व्यक्ति को यह ज्ञान नहीं दिया जाता। उद्धव ! क्या तुमने इस ब्रह्म-तत्त्व को ठीक-ठीक समझ लिया? इसे जानने पर तुम्हारे सारे शोक और मोह समाप्त हो जाएँगे।

उद्धव ने श्रीकृष्ण के चरणों पर अपना सिर टेककर कहा, "हे अज ! हे आद्य ! आपकी कृपा से आज मेरा सारा मोह दूर हो गया। आपने अपनी माया से मुझे स्नेह-पाश में बाँध दिया था और फिर अपनी ही ज्ञानरूपी तलवार से उस बन्धन को काट डाला है। हे महायोगी ! आपको नमस्कार है। मैं आपके शरणागत हूँ। ऐसा कीजिये, जिससे मेरा मन आपके चरण-कमलों में लगा रहे।[५] मेरा अनुराग अक्षय हो।"

तदुपरान्त श्रीभगवान बोले – "अब तुम मेरे प्रिय धाम बदरिकाश्रम चले जाओ। वहाँ एकाग्र चित्त से मेरे उपदेशों पर ध्यान करना। अपनी वाणी और मन को मुझमें लगाए रखना। अन्त में तुम सत्त्व, रज और तम – इन तीनों गुणों के प्रभाव से मुक्त हो जाओगे। मनुष्य की तीन गतियाँ होती हैं – स्वर्ग, मर्त्य और पाताल। इन तीनों को पार करके जो परम गति है, तुम उस ब्रह्मस्वरूप – मुझको प्राप्त करोगे।[६]

श्रीकृष्ण का महाप्रयाण

परीक्षित ने विनम्रतापूर्वक जानना चाहा कि श्रीकृष्ण ने किस प्रकार अपना शरीर-त्याग किया।

उत्तर में शुकदेव बोले – श्रीकृष्ण के निर्देशानुसार उद्धव ने बदरिकाश्रम की यात्रा की। इधर श्रीकृष्ण सभी यदुवंशियों को लेकर प्रभासतीर्थ की ओर चले।

श्रीकृष्ण के साथ यदुवंशी वीरों ने प्रभास जाकर गहरी भक्ति के साथ अनेक कल्याणकारी व्रतों का अनुष्ठान शुरू किया। परन्तु विधि के विधान से यादवगण पवित्र प्रभासतीर्थ में एक तरह का सुमधुर पेय पीकर अभिभूत और उन्मत्त की भाँति आचरण करने लगे। श्रीकृष्ण की माया से उन लोगों के बीच झगड़ा पैदा हो गया। वे लोग क्रोध में ज्ञान-विवेक खोकर धनुष-बाण तथा तलवार लेकर नदी के किनारे आपस में मारकाट करने लगे। पवित्र तीर्थ प्रभास भयंकर युद्धक्षेत्र में परिणत हो गया। मानो किसी मोह से अभिभूत होकर, भाई के साथ भाई, भांजे के साथ मामा और मित्रों के साथ मित्र भिड़ गये और आपस में ही मार-काट करने लगे।

युद्ध करते करते बीच में बाण समाप्त हो गए; धनुष टूट गए, अन्य कोई अस्त्र नहीं बचा। तब योद्धागण एरका नामक घास अर्थात् सरकण्डे लेकर युद्ध करने लगे। दैव की कैसी लीला थी कि यादवों की मुट्ठी में पड़े हुए मात्र सरकण्डे

---

५. नमोऽस्तु ते महायोगिन् प्रपन्नमनुशाधि माम्।
यथा त्वच्चरणाम्भोजे रतिः स्यादनपायिनी। ११/२९/४०

६. मय्यावेशित वाक्चित्तो मद्धर्म-निरतो भव।
अतिव्रज्य गतीस्तिस्रो मामेष्यसि ततः परम्॥ ११/२९/४४

कठोर लौह-दण्ड में परिणत हो गए। श्रीकृष्ण ने बहुत रोका, परन्तु कौन किसकी सुनता है ! एक तो ऋषियों का अभिशाप था; ऊपर से श्रीकृष्ण की माया। जैसे जंगल में उत्पन्न दावानल जंगल को जला डालता है, वैसे ही मन से उत्पन्न अहंकार की आग ने यदुकुल का विनाश कर दिया।

यदुकुल का विध्वंस हो गया। इधर बलराम समुद्र-तट पर जाकर योग-साधना में लीन हो गए। उन्होंने परमात्मा में अपने चित्त को स्थिर कर अपना शरीर त्याग दिया। बलराम के देहावसान से शोक-संतप्त होकर श्रीकृष्ण एक पीपल के पेड़ से शरीर को टिकाकर मौन होकर बैठ गए। उनकी चतुर्भुज-मूर्ति आलोकमय हो उठी। उनकी ज्योति से चारों दिशाएँ आलोकित हो गयीं। उनके नए मेघ की भाँति साँवले -सलोने शरीर के वक्ष पर श्रीवत्स का चिह्न सुशोभित हो रहा था और रेशमी पीताम्बर-धोती एवं रेशमी दुपट्टे से उनके अंग ढँके थे। रक्तिम कमल की भाँति उनके लाल-लाल चरणों में से बायाँ चरण उनकी दाहिनी जाँघ पर रखा हुआ था।

इधर जरा नामक एक बहेलिया शिकार करने हेतु जंगल में घुसा था। ऋषियों के शाप से मूसल के नाश होने पर बने लोहे के टुकड़े से उस बहेलिये ने बाण तैयार किया था। उसने भगवान (श्रीकृष्ण) के चरण-कमल को हिरण समझ कर बाण चला दिया। बहेलिये के तीर से उनका चरण बिंध गया। बहेलिया अपने शिकार की खोज में दौड़ पड़ा। उसने देखा – यह तो चतुर्भुज-रूपधारी स्वयं भगवान श्रीकृष्ण हैं ! बहेलिये ने समझ लिया कि उससे कितना बड़ा अपराध हुआ है। वह श्रीकृष्ण के चरणों में अपना सिर रखकर धरती पर लोटता हुआ रोने लगा। उसने कहा – हे प्रभो ! अनजाने में मैंने यह महा-अपराध कर दिया है, मुझे क्षमा कीजिए।[७]

भगवान ने उसे अभय-दान करते हुए कहा – बहेलिये ! डरो मत। जो हुआ है, वह विधि का विधान था। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं, तुमने मेरे मन की कामना ही पूरी की है। अत: अनेक पुण्य करने से जो फल मिलता है, मेरी इच्छा से तुम उसी स्वर्ग-लोक में निवास करो। श्रीकृष्ण की तीन बार परिक्रमा कर जरा सोने के रथ पर सवार होकर स्वर्ग चला गया।

इधर श्रीकृष्ण के सारथी दारुक ने भगवान को ढूँढ़ते हुए आकर देखा – भगवान अपूर्व ज्योतिर्मय शरीर में पीपल के पेड़ की जड़ से लगकर बैठे हैं। अपनी आँखों से बहते हुए आँसुओं की धार में प्रवाहित होकर दारुक कहने लगा – आप जा रहे हैं। आपको खोकर आज मैं दिग्भ्रान्त हो गया हूँ। अब मैं कहाँ जाऊँगा? कहाँ जाने पर मुझे शान्ति मिलेगी, कृपा कर मुझे बता दीजिए।

दारुक को सांत्वना देते भगवान बोले – यादवों का समय समाप्त हो गया है; यदुवंश का विध्वंस हो गया है, भैया बलराम भी स्वधाम चले गए। तुम द्वारका में जाकर यह समाचार सुना दो। मेरी इस स्थिति की बात भी बता देना। मैं द्वारका को छोड़कर आया हूँ; इसलिए कुछ दिनों में ही द्वारका पुरी को समुद्र निगल लेगा। जो यादवगण अभी भी द्वारका में हैं, वे अपने परिवार के सदस्यों तथा मेरे माता-पिता को साथ लेकर अर्जुन के संरक्षण में अविलम्ब इन्द्रप्रस्थ चले जायँ। और तुम भोग-विलास या विषय-वासनाओं का चिन्तन छोड़कर मेरे ध्यान में मग्न हो जाओ।

सारथी दारुक द्वारका चले गए। देवतागण श्रीकृष्ण के महाप्रयाण का दर्शन करने आए। पितामह ब्रह्मा और समस्त देवताओं को आया देखकर श्रीकृष्ण ने अपने आत्मस्वरूप का ध्यान करते हुए अपने युगल कमल-नयनों को मूँद लिया। आकाश से पुष्पवृष्टि हुई।

शुकदेव ने राजा परीक्षित से कहा – श्रीकृष्ण के अन्तर्धान होने के बाद द्वारका जल-प्लावन में डूब गयी। यदुकुल के बचे हुए बच्चों, बूढ़ों तथा स्त्रियों को अर्जुन इन्द्रप्रस्थ ले आए। अनिरुद्ध के पुत्र वज्र को उन्होंने वहाँ के राजसिंहासन पर आसीन कराया। अर्जुन के मुख से परम आत्मीय कृष्ण-बलराम का अन्तिम संवाद पाकर आपके पितामहगण (युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डव) आपको राजपद पर अभिषिक्त कर महा-प्रस्थान (हिमालय) के पथ पर चल पड़े। जो भगवान के इस अपूर्व जन्म और लीला की कथा का स्वयं कीर्तन करते हैं तथा दूसरों को सुनाते हैं, वे सारे पापों से मुक्त हो जाते हैं।

❖ (क्रमश:) ❖

७. अजानता कृतमिदं पापेन मधुसूदन।
क्षन्तुमर्हसि पापस्य उत्तमश्लोक मेऽनघ॥ ११/३०/३५

मन पर अंकुश लगाओ

हाथी को मुक्त छोड़ दिया जाए तो वह चारों ओर पेड़-पौधों को तोड़ते-मरोड़ते हुए चलने लगता है, पर जब महावत उसके सिर पर अंकुश का वार करता है तब वह शान्त हो जाता है। इसी प्रकार मन को बेलगाम छोड़ देने पर वह तरह-तरह की फालतू चीजों का विचार करने लगता है, पर विवेकरूपी अंकुश का वार करते ही वह शान्त, स्थिर हो जाता है। – ***श्रीरामकृष्ण***

निर्भयता का गुण

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिए विविध विषयों पर अनेक विचारोत्तेजक लेख लिखे थे, जो उसके विभिन्न केन्द्रों द्वारा समय समय पर प्रसारित किये जाते रहे हैं तथा काफी लोकप्रिय हुए हैं। प्रस्तुत लेख आकाशवाणी, रायपुर से साभार गृहीत हुआ है। - सं.)

निर्भयता मनुष्य की एक अत्यन्त दुर्लभ विभूति है। इसीलिए उपनिषदों में बार बार बड़े ऊर्जस्वित स्वरों में निर्भय होने की सीख दी गई है। भारत में निर्भयता की धारणा इस तथ्य पर आधारित है कि भले ही शरीर का नाश हो जाए पर आत्मा का कभी भी विनाश नहीं होता। जो नाशवान् है उसके लिए चिन्ता करना व्यर्थ है। वह आज नहीं तो कल नष्ट होने वाला है। किन्तु आत्मा तो किसी काल में नष्ट नहीं होती। निर्भयता की यह धारणा आत्मा की अमरता के सिद्धान्त पर आधारित है। यह सिद्धान्त हममें अद्‌भुत साहस का संचार करता है। शरीर का चिन्तन दुर्बलता को जन्म देता है, आत्मा का विचार हममें अक्षय शक्ति का संचार करता है। हम मर्त्यशील शरीर नहीं हैं, हम तो अजर-अमर-अविनाशी आत्मतत्त्व हैं। शरीर को तुच्छ मानने से ही महत् कार्य सम्पादित होते हैं। जो शरीर को तुच्छ मानता है, वही त्याग कर सकता है, वही समाजदेवता, राष्ट्रदेवता या विश्वदेवता की सेवा के लिए अपने जीवन को निछावर कर सकता है। शरीर को महान् मानने वाले कभी महान् नहीं बने। शरीर ही आसक्ति का और समस्त दुर्बलता का कारण है। शरीर सबसे पहले हमें इन्द्रियों की तुच्छ सीमा में बाँधता है। उस दायरे से किसी प्रकार निकले, तो परिवार की सीमा हमें बाँध लेती है। उससे आगे किसी प्रकार बढ़ो, तो जाति की दुर्भेद्य दीवार अपने शिकंजे में हमें जकड़ लेती है। आज जाति-वर्ण आदि के भेदों ने राष्ट्र की कैसी दुर्दशा कर रखी है। हमारा सारा चिन्तन इन्हीं तंग दायरों में बँधा होता है। जब तक हम इस सीमा के ऊपर नहीं उठेंगे, तब तक हमारे सारे प्रयत्नों के बावजूद राष्ट्र ऊपर नहीं उठ सकेगा।

साहस दो प्रकार का होता है। एक प्रकार का साहस है – तोप के मुँह में दौड़ जाना। दूसरे प्रकार का साहस है – अपने को आत्मा मानकर विश्वास करना। कहते हैं कि एक बार सिकन्दर महान् जब भारत आया था तो यहाँ महात्माओं की खोज में लग गया। उसके गुरु ने उससे कहा था कि जब तुम भारत जाओ, तो वहाँ से एक तत्त्वज्ञानी महात्मा को अपने साथ सम्मानपूर्वक लेते आना। उससे तुम्हारा और तुम्हारे देश का कल्याण होगा। जब सिकन्दर महान् ने एक ऐसे ही महात्मा को खोज निकाला और उन्हें अपने साथ देश ले जाने की इच्छा प्रकट की, तो साधु ने इसे स्वीकार नहीं किया और कहा, "मैं इस वन में बड़े आनन्द से हूँ।" सिकन्दर बोला, "मैं समस्त पृथ्वी का सम्राट् हूँ। मैं आपको असीम ऐश्वर्य और उच्च पद-मर्यादा दूँगा।" साधु बोले, "ऐश्वर्य, पद-मर्यादा आदि किसी बात की मेरी इच्छा नहीं है।" तब सम्राट् ने साधु को डर दिखाते हुए कहा, "यदि आप मेरे साथ नहीं चलेंगे, तो मैं इस तलवार से आपको काट डालूँगा।" इस पर साधु बहुत हँसे और बोले, "राजन्! आज तुमने अपने जीवन में सबसे मूर्खतापूर्ण बात कही। तुम्हारी क्या हस्ती कि मुझे मारो? सूर्य मुझे सुखा नहीं सकता, आग मुझे जला नहीं सकती, कोई शस्त्र मुझे काट नहीं सकता, क्योंकि मैं जन्मरहित, अविनाशी आत्मा हूँ।" यह आध्यात्मिक साहस है।

स्वामी विवेकानन्द ऐसा ही साहस अपने देशवासियों में देखना चाहते थे। वे कहते हैं – "हे नर-नारियो! उठो, आत्मा के सम्बन्ध में जाग्रत होओ, सत्य में विश्वास करने का साहस करो। संसार को कोई सौ साहसी नर-नारियों की आवश्यकता है। अपने में वह साहस लाओ जो सत्य को जान सके, जो जीवन में निहित सत्य को दिखा सके, जो मृत्यु से न डरे, प्रत्युत उसका स्वागत करे, जो मनुष्य को यह ज्ञान करा दे कि वह आत्मा है और सारे जगत् में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो उसका विनाश कर सके। तब तुम मुक्त हो जाओगे।" कवि विवेकानन्द गाते हैं –

साहसी, जो चाहता है नाश, मिल जाना मरण से।
मृत्यु की गति नाचता है, माँ उसी के पा आई॥

आत्माराम के संस्मरण (११)

स्वामी जपानन्द

(रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी स्वामी जपानन्द जी (१८९८-१९७२) श्रीमाँ सारदादेवी के शिष्य थे। स्वामी ब्रह्मानन्दजी से उन्हें संन्यास-दीक्षा मिली थी। उन्होंने बँगला में श्रीरामकृष्ण के कुछ शिष्यों तथा अपने अनुभवों के आधार पर कुछ रोचक संस्मरण लिपिबद्ध किये थे। अब तक हम उनके तीन ग्रन्थों – 'प्रभु परमेश्वर जब रक्षा करें', 'मानवता की झाँकी' एवं 'आत्माराम की आत्मकथा' का धारावाहिक प्रकाशन कर चुके हैं। १९६५-६६ के दौरान उन्होंने एक बार पुन: कुछ संस्मरणों को बँगला भाषा में लिखा था। उनमें से कुछ अप्रकाशित हैं। पूर्व-प्रकाशित घटनाएँ भी भिन्न विवरणों के साथ लिखी गयी हैं, अत: पुनरुक्त होने पर भी रोचक, शिक्षाप्रद तथा प्रेरणादायी हैं। – सं.)

लौटकर फिर वृन्दावन में

फिर वृन्दावन लौटने के बाद देखा कि स्वामीजी के भाई श्रद्धेय महेन्द्र बाबू अब भी वहीं हैं। डॉक्टर मुझे देखकर बड़े खुश थे, क्योंकि उन दिनों मलेरिया का बड़ा जोर था और सेवाश्रम में सेवकों का अभाव था। वे स्वयं भी मलेरिया से ग्रस्त थे और कुनैन खा-खाकर उनका सिर चक्कर खा रहा था। आश्रम में दूध आदि का भी अभाव था। एक दिन छोड़कर बुखार आती थी। रोगियों को वे एक साथ ही दो दिन की दवा दे देते थे, क्योंकि दूसरा डॉक्टर नहीं था।

संन्यासी के कन्धे पर डॉक्टर का काम भी आ पड़ा। जिस दिन डॉक्टर ज्वरग्रस्त रहते, उस दिन उसे ही सँभालना पड़ता। इसके बाद उसे भी बुखार आने लगी, लेकिन जिस दिन डॉक्टर ठीक रहते, उसी दिन आती – वही, एक दिन छोड़कर। इसीलिये चिकित्सालय का कार्य चलता रहा।

ज्वरग्रस्त होने के पहले संन्यासी एक दिन डॉक्टर के साथ पास ही स्थित कालिकानन्द जी के डेरे पर गया। वे षड्दर्शन के विद्वान् थे। डॉक्टर उनसे कठोपनिषद् पढ़ रहे थे। उस दिन एक सिद्धान्त को लेकर खूब तर्क हुआ। संन्यासी ने स्वामीजी के 'ज्ञानयोग' से ही सारी बातें कही, परन्तु संयोगवश उनका नाम नहीं लिया। कालिकानन्द जी सेवाश्रम में ही दोनों समय चाय पीने आया करते थे। यथानियम शाम को आये। उस समय संन्यासी को जोर का बुखार आया हुआ था और वह कुनैन खाकर लेटा हुआ था। उन्होंने आते ही पूछा कि वह जो युक्ति दिखा रहा था, वह उसे कहाँ से मिला। उस पर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ था। क्योंकि वे जानते थे कि संन्यासी ने शास्त्रों का ज्यादा अभ्यास नहीं किया है। संन्यासी सहज भाव से बोला – "क्यों, क्या आपने स्वामीजी का ज्ञानयोग नहीं पढ़ा?" उत्तर – "नहीं, कभी ऐसा नहीं लगा कि उसे पढ़ने की जरूरत है। सचमुच इस सेवाश्रम के साथ १९०१ ई. से ही साहचर्य रहने पर भी और आप लोगों के अनेक साधुओं के साथ परिचय रहने पर भी, बात-बात में रामकृष्ण-विवेकानन्द की दुहाई सुनकर मन में ऐसी धारणा हुई थी कि आप लोग कोई नया दिव्य पुरुष खड़ा करने का प्रयास कर रहे हैं; और शास्त्रों के साथ कोई सम्पर्क नहीं रखते। बस, उसी धारणा के कारण मैंने इनका कोई भी ग्रन्थ नहीं पढ़ा, परन्तु आज आपके साथ उस समय की चर्चा से मैं आश्चर्यचकित हो गया हूँ। और आपने यह तो बताया नहीं कि ऐसा विवेकानन्द कहते हैं, इसीलिये यह जानने का आग्रह उत्पन्न हुआ कि आपको वह युक्ति कहाँ से मिली। अब बताइये कि उनकी कौन-सी पुस्तक पढ़ने से उन्हें ठीक से समझ सकूँगा?"

संन्यासी – "ज्ञानयोग पढ़िये, वह आपके भाव के साथ मेल खायेगा।" वे तत्काल ज्ञानयोग ले गये। अगले दिन सुबह चाय के समय वे उसे हाथ में लिये हुए आये। संन्यासी को बुखार नहीं था, इसीलिये वह भी उपस्थित था। वे बोले – "क्या ही अमृत-वर्षा की है स्वामी विवेकानन्द ने! अहा, रात में ही दो बार पढ़ गया और इतने दिन उनकी अवहेलना करने के लिये मुझे पश्चात्ताप हो रहा है। कहिये, अब उनकी कौन-सी पुस्तक पढ़ूँ? अच्छा, एक काम करने से कैसा रहेगा, प्रतिदिन चाय के बाद एक दिन मैं पढ़ूँगा और एक दिन आप पढ़ेंगे।"

संन्यासी – "यह तो बड़ी अच्छी बात है।" (यह प्रस्ताव अवधूत नित्यगोपाल महाराज के एक वृद्ध शिष्य वृन्दावनोत्सव को पसन्द नहीं आया। वे भी प्रतिदिन चाय पीने आते थे और बूढ़े बाबा के मित्र थे। जितनी भी व्यर्थ की चर्चाएँ होती थीं, इससे वे सब बन्द हो गयीं।) इसी प्रकार स्वामीजी की कई पुस्तकों का पाठ पूरा हुआ। शाम को कालिकानन्द जी महाभारत का शान्ति पर्व पढ़ा करते थे और बीच-बीच में उसके मतवाद पर चर्चा भी करते। एक दिन देखा कि व्याख्या के दौरान वे बार-बार स्वामीजी का उल्लेख कर रहे हैं। डॉक्टर तथा संन्यासी को हँसते देखकर पूछा – "आप लोग हँस क्यों रहे हैं?" उत्तर – "महाराज, आज तो आप बारम्बार स्वामीजी का उल्लेख कर रहे हैं, इसीलिये।"

कालिकानन्द जी – "ओह! जानते हैं, मैं प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। ऐसे ब्रह्मज्ञ महापुरुष की अवज्ञा करने से जो दोष हुआ है, उससे मुक्त होने के लिये मन छटपटा रहा है। आपने जो बात कही कि 'कोई पुस्तक पढ़ने से ही उसकी सारी बातें मान लेनी होंगी – ऐसी बात नहीं है। कुरान,

बाइबिल पढ़कर उनकी मान्यताओं का समर्थन करने के लिये नहीं पढ़ा। उनकी सारी बातें स्वीकार नहीं कर लीं।' – यह मेरे हृदय के भीतर प्रविष्ट हो गयी है। और उस भ्रान्त धारणा के चलते मैं इतने वर्षों तक ऐसे अमृत का रसास्वादन करने से वंचित रहा हूँ। इसी का खेद है!''

धन्य हैं साधुपुरुष कालिकानन्द जी !!

वृन्दावन की एक घटना

संन्यासी नासिक आदि का भ्रमण करके दुर्गापूजा के समय पुनः वृन्दावन लौटा है। बहुत दिनों से पूजा-दर्शन नहीं हुआ। सेवाश्रम के मार्ग में ही स्वामी केशवानन्द का आश्रम पड़ता है। उस वर्ष वहीं पूजा का आयोजन हुआ था। इसीलिये माँ का दर्शन कर आने की इच्छा से संन्यासी वहीं गया हुआ था। मण्डप में ही कालिकानन्द जी से भेंट हो गयी। वे बड़े प्रसन्न हुए और वहीं पर प्रसाद ग्रहण करने का निमंत्रण दिया। आश्रम में केशवानन्द जी भी उपस्थित थे। संन्यासी के साथ घनिष्ठता देखकर उन्होंने कालिकानन्द जी से उसका परिचय पूछा। उसके बाद निकट बुलाकर बोले – ''आप लोगों के राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) ने भुवनेश्वर में मठ बनाया है। वहाँ आसपास के गावों में धान की जमीन मिलती है। लोग बन्धक रख देते हैं, उसके बाद छुड़ा नहीं पाते। उसी प्रकार से कुछ जमीन प्राप्त कर लेने पर बेलूड़ मठ की अन्न-समस्या दूर हो जायेगी। यही देखिये न, मैं यहाँ काफी चावल भेजता हूँ, भुवनेश्वर का भी खर्च चलता है, हरिद्वार को भी देता हूँ और फिर ज्ञानानन्द को भी देता हूँ।'' (काशी के भारत-धर्म-महामण्डल के संस्थापक स्वामी ज्ञानानन्दजी उन्हीं के शिष्य थे)।

संन्यासी अवाक् रह गया। विनयपूर्वक बोला – ''हमारे महाराज तो गरीबों को देने गये हैं, लेने नहीं गये।''

केशवानन्द स्वामी – ''हाँ, हाँ, परन्तु मैं जो कह रहा हूँ, वह तो एक प्रकार से खरीदना ही हुआ। इसमें तो कोई दोष नहीं है। और संघ चलाने के लिये तो यह सब ... ...।''

संन्यासी – ''क्षमा करें, मैं तो इससे सहमत नहीं हो पा रहा हूँ और हमारे महाराज तो किसी काल में नहीं हो सकते।''

कालिकाननन्द जी ने देखा कि बात बढ़ने की सम्भावना है, इसलिये बीच में ही काटते हुए बोले – ''देरी हो रही है, आप लोग जाकर स्नान आदि कर लीजिये। यहाँ आने की जरूरत नहीं होगी, प्रसाद वहीं भेज देता हूँ।''

इसके बाद एक मजे की बात हुई। एक गेरुआधारी प्रौढ़ महिला दुर्गा-मण्डप में खड़ी थी। संन्यासी की ओर द्रुत वेग से आती हुई बोली – ''सुन रहे हैं, सुन रहे हैं!'' संन्यासी खड़ा हो गया – ''कहिये, क्या कहना है?'' – ''यही कि आपकी शक्ति कहाँ है? शक्ति के बिना साधना नहीं होती।''

संन्यासी – ''मुझमें यथेष्ट शक्ति है।'' वह बोली – ''नहीं, नहीं, वह शक्ति नहीं। साधना में सहायता के लिये एक शक्ति की जरूरत पड़ती है। आपको कुछ भी नहीं करना होगा, मैं भिक्षा आदि करके सब ले आऊँगी।''

संन्यासी समझ गया कि महिला वाममार्गी है, (केशवानन्द जी को दिखाते हुए) बोला – ''उधर चली जाइये। उनसे पूछ लीजिये कि उन्हें जरूरत है या नहीं।''

कालिकानन्द जी ने पूछा – ''वह क्या कह रही है?''

संन्यासी ने सब बताते हुए कहा – ''वह पुरुष पकड़ने के प्रयास में घूम रही है। उसे बाहर निकलवा दीजिये।''

उन्होंने तत्काल वैसा ही किया।

अमृतसर कांग्रेस और भिक्षाटन का अनुभव

(१९१९ ई. के दिसम्बर में) जलियावाला बाग में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था। डॉ. एनी बेसेंट, मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजन दास और गाँधीजी – उस हत्याकाण्ड के बाद पहला अधिवेशन वहीं कर रहे थे। संन्यासी गया था, परन्तु उन लोगों के व्याख्यान में उसे कोई रस नहीं आ रहा था। उसके भीतर आग जल रही थी – कैसा अत्याचार हुआ! वैसे इसके लिये उत्तरदायी तो लोगों की यह मूर्खतापूर्ण धारणा थी कि अंग्रेजों को भगाने के लिये गाँधीजी के रूप में स्वयं विष्णु के अवतार आये हैं। उनकी अधीनता स्वीकार कर लेने से ही काम हो जायेगा। अंग्रेज कुछ भी नहीं कर सकेंगे। ग्रामीण अंचलों से जत्थे – जाटों के दल आये थे – कन्धों पर बड़ी-बड़ी लाठियाँ, रजाई, कम्बल लिये आकर उसी बाग में उपस्थित हुए थे। बाग के चारों ओर मकान तथा ऊँची दीवारें थीं और बाजार की ओर आने-जाने के लिये बनारस की गलियों के समान केवल एक सँकरी-सी गली थी। जब नेतागण अपनी अग्निमयी वाणी के द्वारा अंग्रेजों को निकालने का व्रत दिला रहे थे – तभी ओ. डॉयर सेना ले आया उस गली के मुख पर मशीनगन लगा दिया। (आश्चर्य की बात यह कि वह व्यक्ति आयरिश था।) सेना को देखते ही लोग भागने का मार्ग ढूँढ़ने लगे, परन्तु उस गली के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं था। मकान के निवासियों ने अपने दरवाजे पहले से ही बन्द कर रखे थे। इसके फलस्वरूप लोग भेंड़-बकरियों के रेवड़ की भाँति मृत्यु के मुख में ही दौड़ पड़े थे और असंख्य लोग मरे भी थे।

यही सब सोच-सोचकर संन्यासी का हृदय भी अग्निमय हो उठा था। इसीलिये व्याख्यानों में उसे रस नहीं आ रहा था। उसे नगर के बाहर रामबाग में ठहरने का स्थान मिला था। माली अच्छा आदमी था, पैसे लेकर दाल-रोटी बना देता था। संन्यासी सुबह स्नान आदि करके अमृतसर के गुरुद्वारे में जाकर ऊपर के बरामदे में बैठा रहता और ग्रन्थ-

पाठ तथा भजन सुनता रहता। सिक्खों के गौरव का यह स्थान उसे खूब प्रिय लगता।

एक दिन उसे माधुकरी करने की इच्छा हुई। सरोवर के पास ही बस्तियाँ थीं। वह एक गली में घुसा। उस समय ग्यारह या साढ़े ग्यारह बजे होंगे। पहला, दूसरा और तीसरा मकान बन्द था। चौथे मकान के ऊपर एक खुली खिड़की के किनारे बैठकर एक स्त्री और एक पुरुष बातें कर रहे थे। संन्यासी ने उनके बन्द दरवाजे के सामने खड़े होकर ज्योंही "नारायण हरि" कहा, त्योंही वे महाशय "चोर-चोर" कहकर चीत्कार कर उठे। संन्यासी तो अवाक् रह गया। खड़ा ही रहा, जो होना है, हो। आसपास के मकानों के दरवाजे खोल -खोलकर कई स्त्री-पुरुष बाहर निकल आये और संन्यासी को वहाँ खड़ा देखकर एक वृद्ध ने पूछा। जब उसे पता चला कि कि भिक्षा माँगने पर उसे "चोर-चोर" कहा है, तो नाराज होकर बोले – "साले आर्य, साधु ने भिक्षा माँगा है, इसी कारण उसे चोर कह दिया! इस मुहल्ले में घुस आया है, साले को भगाने की जरूरत है।" उसके समर्थन में और भी अनेक नर-नारी एकत्र हो गये। माहौल अपने विपक्ष में देखकर 'आर्य' खिड़की बन्द करके वहाँ से खिसक पड़ा।

एक अन्य प्रौढ़ा आयीं और बुलाकर अपने घर से रोटी-सब्जी दी। अन्य दो-तीन लोग भी रोटियाँ ले आये और संन्यासी को भरपेट खिलाया। ये लोग सब सिक्ख थे। वह माता बोलीं – "हमारे घर थोड़ा जल्दी आया कीजियेगा दस से साढ़े दस के बीच आइयेगा। बच्चे स्कूल जाते हैं, उनके लिये भोजन तैयार हो जाता है। उन लोगों के घर मत जाइयेगा, वे आर्य हैं। देखिये न, आप सन्त हैं और आपको भिक्षा न देना हो तो न दे, परन्तु 'चोर' क्यों कहा? ये लोग हमारे मुहल्ले में आ घुसे हैं। उनका रहना हमें पसन्द नहीं है। हाँ, सन्त को चोर कहनेवाले, उनका मुँह तोड़ देना उचित होगा। बदमाश कहीं के!"

संन्यासी उस मुहल्ले में भिक्षा के लिये जाता था। वे ही सब माताएँ उसे यत्नपूर्वक भिक्षा देतीं। कोई-कोई तो – "हमारे घर आइये, हमारे घर आइये" – कहते हुए उसका हाथ पकड़कर खींच ले जातीं। सन्त-सेवा के प्रति उनका ऐसा ही आग्रह था। धन्य गुरु नानक! धन्य पंचनद देश!!

बाद में संन्यासी ने 'माधुकरी' करना बन्द करके 'काष्ठ-मौन-व्रत' अपनाया था और गुजरात के भरुच (भृगुकच्छ) से 'आकाश-वृत्ति' या 'अजगर-वृत्ति' का आश्रय लिया था।

लाहौर का सेवाश्रम

अमृतसर के जलियावाला बाग में हत्याकाण्ड के बाद कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था। तब संन्यासी वहीं था और नगर के बाहर एक निर्जन स्थान – रामबाग में ठहरा था। सहसा एक दिन ब्र. सुरेन संन्यासी से मिलने आये (बाद में इन्हें पूज्य ब्रह्मानन्द महाराज से संन्यास-दीक्षा मिली तथा रंगून में थे) और उससे लाहौर जाने के लिये हठ करने लगे।

वे लाहौर से ही कांग्रेस देखने आये थे, मगर यहाँ पर उन्हें एक टेलीग्राम मिला कि लाहौर सेवाश्रम के सेवानन्द विक्षिप्त हो गये हैं और सब कुछ लुटाकर न जाने कहाँ चले गये हैं। इस पर ये किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये थे। फिर लाहौर में जाकर देखा, तो सममुच ही – 'लूट ले, लूट ले' – कहकर उन्होंने आश्रम की सारी चीजें – होम्योपैथी की सारी पुस्तकें, बरतन-भाँड़े आदि सब लुटाकर गायब हो गये हैं।

सुरेन तत्काल फिर अमृतसर आये और संन्यासी से वहाँ चलने के लिये हठ करने लगे। और कोई चारा न देख, संन्यासी उसके साथ लाहौर गया और वहाँ पहुँचकर देखा कि सब कुछ तहस-नहस हो चुका है, तीन-मंजिले मकान का भाड़ा देना बाकी है और रुपये बिल्कुल भी नहीं हैं। अब क्या किया जाय? वह बड़ी चिन्ता में पड़ गया।

होम्योपैथिक दवाइयों का स्टाक तब भी मौजूद था। पहले तो उसने दवाखाना खोलकर औषधि वितरण का कार्य आरम्भ किया। फिर सेवानन्द जी की खोज आरम्भ हुई। इसके बाद ब्र. सुरेन ने दूध-दही की दुकानवाले एक भक्त की मार्फत एक सार्वजनिक अपील जारी किया – "जो व्यक्ति जो कुछ भी ले गया है, उसे कृपा करके लौटा दे।" कुछ दिनों के बाद कुछ मूल्यवान होम्योपैथी की पुस्तकें प्राप्त हुईं। और कुछ नहीं मिला। संन्यासी के पास मात्र कुछ रुपये थे और चन्दा जुटाना तो उसके स्वभाव में ही नहीं था। सुरेन बोला – "लाहौर में भी गोलियाँ चली थीं। बड़ा नुकसान हुआ है।" वह भी रुपये जुटाने में अकुशल था। आखिरकार उस मकान को छोड़ने के सिवा दूसरा कोई चारा न था। मकानवाले ने दया करके कहा कि साठ रुपये देने से वह बाकी तीन महीने का किराया छोड़ देगा। यह भाड़ा संन्यासी को ही देना पड़ा, क्योंकि सुरेन उस समय खाली हाथ था। इसके बाद दूधवाले के ही प्रयास से एक सरकारी अफसर के किराये के मकान के नीचे एक विशाल गोदाम-नुमा हॉल मुफ्त मिल गया। ये सेवानन्द स्वामी के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे और उनके प्रति प्रगाढ़ अनुराग भी रखते थे। अस्तु।

बाद में सारा सामान – चिकित्सालय की मेज, कुर्सियाँ, आलमारी, दवाएँ तथा दो दर्जन बेंचें – जो रात्रि-पाठशाला तथा प्रति सप्ताह गर्भवती महिलाओं के लिये सामान्य स्वास्थ्य ज्ञान के साथ वैद्यकीय चिकित्सा तथा निर्देश आदि देने के लिये, नियमित स्कूल तथा धात्री की कक्षाओं के लिये उपयोग में आते थे। यह सब कुछ रखने के लिये जगह हो गया। ब्र. सुरेन के परिचित तथा सेवानन्द जी के अनुयायी तीन पंजाबी लोगों को यथारीति गवाह बनाकर निकट के एक

स्कूल को इस शर्त के साथ दे दिया गया कि यदि सेवानन्द जी लौटकर माँगें, तो वह सब उन्हें लौटा देंगे। उस स्कूल के सभी लोग सेवानन्दजी से तरह-तरह से उपकृत हुए थे।

लाहौर में जब गोली चली, उस समय महिम बाबू (महेन्द्र नाथ दत्त), ब्रह्मचारी प्राणेशकुमार और काशी के एक फरार क्रान्तिकारी चिन्ताहरण सेवानन्दजी के साथ निवास कर रहे थे। सुरेन ने बताया कि वे महिमबाबू के प्रति साक्षात् देवता के समान श्रद्धा रखते थे और उनकी सेवा में हाथ खोलकर खर्च करते थे। ब्र. प्राणेश कुमार की प्रेरणा तथा महिम बाबू के आशीर्वाद से उन्होंने उक्त रात्रि-पाठशाला तथा गर्भवती नारियों के लिये सेवा की व्यवस्था की थी। शर्त यह थी कि वे रुपये ला देंगे, पर व्यवस्था आदि प्राणेश कुमार को करनी होगी। प्राणेश कुमार पहले सरकार के शिक्षा विभाग में कार्य करते थे। नौकरी छोड़ने के पूर्व वे सम्भवत: 'इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स' के पद पर थे। उसके बाद वे सब छोड़कर महिमबाबू की सेवा में लग गये और अन्तिम दिन तक उनकी सेवा में काफी श्रम, समय तथा धन खर्च किया था। उक्त शर्त के साथ वह सेवा-कार्य आरम्भ हुआ। परन्तु जिस दिन लाहौर में गोली चली, उसी दिन सेवानन्दजी लोगों के चक्कर में पड़कर एक आवेदनकारी टोली के अगुआ होकर गये थे और पुलिस के हाथ में पड़कर बन्दी बना लिये गये। उनकी टोली शान्त थी। उसने कोई उपद्रव नहीं किया था। परन्तु अन्य टोलियों के लोगों ने गड़बड़ी की थी, जिसके फलस्वरूप गोलियाँ चलीं। बहुत-से लोग मारे गये थे। सेवानन्द जी के गिरफ्तार होने और गोलियाँ चलने का समाचार पाकर महिम बाबू को स्नायविक विकार हो गया। ब्र. प्राणेश कुमार तथा चिन्ताहरण पुलिस के हाथों से बचने के लिये महिम बाबू को साथ लेकर वृन्दावन चले गये। सुरेन ने बताया कि वे सारे रुपये-पैसे और जितने भी अच्छे-अच्छे बिस्तर-कम्बल आदि भी अपने साथ ले गये थे। सुरेन उस समय अमृतसर का कांग्रेस देखने गया था। जाते समय वे लोग मकान की चाभी उस दूध-दहीवाले को सौंप गये थे।

इधर एक उच्च पदस्थ अंग्रेज अफसर, जो सेवानन्दजी के पास रोगी के रूप में आये थे और उनकी चिकित्सा से भयंकर रोग से मुक्त हो गये थे, उनकी गिरफ्तारी की बात सुनते ही पुलिस-स्टेशन गये और उनके मुख से सारा वृत्तान्त सुनने के बाद, अपनी जिम्मेदारी पर उन्हें मुक्त करा लिया। उनकी मुक्ति की सूचना पाकर उनकी टोली के लोग भड़क उठे और उनके ऊपर विश्वासघात का आरोप लगाया। आरोप पूर्णत: झूठा होने पर भी, उसने उस समय वही रूप धारण किया। बाद में लोगों को पता चला कि उन्होंने किसी के विरुद्ध कुछ भी नहीं कहा है। उन्होंने केवल इतना ही और सत्य ही कहा था कि उन्होंने या उनकी टोली के किसी ने नहीं, बल्कि अन्य दल के लोगों ने ही हुल्लड़बाजी शुरू की थी। इसके बाद पूर्वोक्त साहब की चेष्टा से वे मुक्त हुए थे।

परन्तु आश्रम में लौटकर उन्होंने देखा कि वहाँ ताला लटक रहा है – कोई भी नहीं है। चाभी उक्त दुकानदार को देकर सभी लोग जा चुके थे। ताला खोलकर उन्होंने देखा कि वहाँ रुपये-पैसे कुछ भी नहीं हैं और महिम बाबू तथा ब्र. प्राणेश कुमार का कोई पत्र भी नहीं है। वे मर्माहत हो गये। यह क्या? ऐसा संकट का समय, और वे लोग इस प्रकार पलायन कर गये! वे बिना खाये, बिना सोये उसी मकान के एक बेंच पर सारे दिन बैठे रहे और अगले दिन सम्भवत: अति दु:ख से किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर – 'लूट ले, लूट ले' – कहते हुए सब कुछ लुटाकर अज्ञातवास में चले गये।

मुझे तो ऐसा ही लगता है कि उन लोगों का उस प्रकार का अनुचित आचरण ही उनके इस उन्माद का कारण था। अस्तु। उक्त समाचार पाते ही ब्र. सुरेन आग्रह करके संन्यासी को लाहौर ले गया था।

सेवानन्द जी का संवाद मिलेगा, वे लौट आयेंगे – यह आशा लेकर ही सेवाश्रम में दवा-वितरण का कार्य शुरू कर दिया गया था और वह संन्यासी को ही करना पड़ता था। सुरेन दूसरे कार्य करता – शाक-सब्जी और तन्दूर से ताजी रोटियाँ बनवाकर लाना; जो लोग सामान लूटकर ले गये थे, उनका पता लगाकर, समझाकर वापस पाने की चेष्टा करता। रात में वह आधा सेर दूध और रोटियाँ खाता। परन्तु अन्तत: संन्यासी की जेब बिल्कुल खाली हो गयी। इधर कोई आय भी नहीं थी। समस्या थी कि अब आगे क्या किया जाय!

लाहौर के अनारकली गेट के ठीक बाहर नगरपालिका का उद्यान है। उद्यान के भीतर गेट से थोड़ी ही दूरी पर एक छोटा-सा शिव-मन्दिर था और उससे संलग्न एक टीन के छतवाली कुटिया में एक नाथपन्थी साधु रहते थे। वहाँ उनकी धूनी थी, गाँजे की चिलम थी और रात में जुटता था गँजेड़ियों का अड्डा। मन्दिर में ठाकुर का एक बड़ा-सा चित्र (वाटर-कलर पेंटिग) था। सुरेन को ज्ञात था कि उस मन्दिर के पास की जमीन एक सज्जन ने सेवानन्द जी की मारफत मिशन के अध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द के नाम पर दान किया है।

रखने-खाने का बड़ा कष्ट था। सुरेन ने प्रयास करके, उन नाथ साधु की अनुमति से, उनकी कुटिया के एक ओर सेवाश्रम की ठीक उल्टी दिशा में एक तम्बू गाड़कर और दो-तीन खाटें ले जाकर एक अस्थायी आश्रय का निर्माण किया। रात में हम वहीं शयन करते और दिन में शहर के मकान में औषधालय चलाते।

साधु प्रारम्भ में अच्छा ही व्यवहार करते थे। बीच-बीच में खाने को भी कहते और रात में सुरेन को दो-एक रोटियाँ तो मिल ही जातीं। उसके बाद संन्यासी की छोटी थैली से

उसकी अच्छी छूरी तथा और भी दो-एक आवश्यक चीजें चोरी हो गयीं। सुरेन को साधु के बालक चेले पर सन्देह हुआ और उसने उसको दो-चार कड़ी बातें भी सुना दीं। अच्छा वाला कम्बल भी चोरी हो गया। अब तो उसके साथ झगड़ा किये बिना वहाँ रहना कठिन हो गया। पता चला कि लाहौर के विख्यात कांग्रेस-नेता लाला दुलीचन्द जी ने उस जमीन के दान का दस्तावेज बनाया था। अपना कर्तव्य निर्धारित करने हेतु हम लोग उनके पास गये।

उन्होंने बड़ी भद्रता का व्यवहार किया, पर बोले – "वह नाथपन्थी साधु वहाँ अनेक वर्षों (२०-२५) से है, यदि वह स्वेच्छा से छोड़ दे तो मिल सकता है, मगर वह तो छोड़ने-वाला नहीं है। उसे जबरन हटाने के सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है, परन्तु उसमें तो मारपीट से लेकर खून-खराबी तक हो सकती है। यदि मिशन के अध्यक्ष उसके लिये राजी हों, तो वे उसकी व्यवस्था करने को तैयार हैं, लेकिन क्या वे राजी होंगे?" संन्यासी – "कदापि नहीं।"

इस पर वे बोले – "उसे छोड़ने के लिये कानूनी नोटिस दिया जा सकता है; उनका प्रतिनिधि यह कार्य कर सकेगा। जमीन बड़ी अच्छी जगह पर है, अनारकली गेट के पास ही है, परन्तु नगरपालिका उद्यान के भीतर है। उस पर मिशन का एक बड़ा सुन्दर केन्द्र बन सकता है। लिखकर देखिये।"

संन्यासी ने पूज्य शरत् महाराज (स्वामी सारदानन्द) को सब सूचित करते हुए पत्र लिखा। उत्तर मिला – "यदि तुम अपनी जिम्मेदारी पर कर सकते हो, तो करो, हमें कोई आपत्ति नहीं है। यहाँ से कोई सहायता नहीं मिल सकेगी और पैसे भी नहीं मिलेंगे।"

इधर बाल्टी आदि चोरी हो जाने से सुरेन ने उस नाथपन्थी साधु के साथ झगड़ा कर लिया। हारकर फिर से उस गोदाम वाले मकान में ही आश्रय लेना पड़ा।

वहाँ एक सरदारजी (सुन्दर सिंह) दवा लेने आया करते थे। संन्यासी के साथ उनका खूब लगाव हो गया था। वे मिलिटरी के लेखा विभाग में हेड क्लर्क थे। सम्भवत: रविवार का दिन था। सुरेन ने संन्यासी के लिये तंदूर की रोटियाँ और थोड़ी-सी दाल ला दिया और फिर स्वयं खाने चला गया। सरदारजी ने पूछा – "तंदूर की रोटियाँ क्यों? आप लोगों का खर्च कैसे चलता है?"

संन्यासी ने उन्हें सोचनीय आर्थिक अवस्था की बात बतायी। उन्होंने तत्काल अपने घर में ही भिक्षा लेने का आग्रह किया। संन्यासी ने बताया कि वे दो लोग हैं। – "आप दोनों ही खायेंगे। एक व्यक्ति खाकर दूसरे के लिये ले आयेगा।" घर दिखाने के लिये सुरेन को साथ ले गये और शर्त रख गये कि छुट्टी के दिन संन्यासी उनके साथ ही खायेगा और सत्संग भी करेगा।

जय माँ! तुमने बचाया। बड़ी चिन्ता हो रही थी। सुरेन तो १५-१६ रोटियाँ खाता था। उन दिनों तन्दूर की एक रोटी दो पैसे में आती थी। और दाल एक आने में एक कटोरी। रोज एक रुपये की भी आमदनी नहीं थी और खर्च में कमी नहीं थी। आधे सेर दूध की कीमत थी दो आने। वह तो उसे लगती ही थी। इसी प्रकार दिन बीत रहे थे और हम सोच रहे थे कि क्या किया जाय?

एक दिन सुरेन बोला कि वह चल नहीं पा रहा है। उसके दाहिने या बाँये पाँव की एँड़ी में भयानक पीड़ा थी और बुखार भी हुई थी। एक नई समस्या खड़ी हो गयी। देखकर लगा कि भीतर पक गया है, मवाद भी हो गया है। होम्योपैथी दवा से काम नहीं हुआ। पीड़ा और भी बढ़ी। तलवे का चमड़ा मोटा और मजबूत होता है, इसलिये फटा नहीं। पास ही एक डॉक्टर रहते थे। उनकी शरण लेनी पड़ी। देखते ही बोले – "खूब पक गया है, काटना ही पड़ेगा।" वही सही। काटने के बाद एक सप्ताह से भी अधिक काल तक हर रोज उनकी मरहम-पट्टी का काम चला। उन्हें पावरोटी और दूध देने का आदेश होने से उतने दिन वही चला।

सहसा बिना कोई सूचना दिये वृन्दावन से डॉक्टर महाराज (उद्बोधन के स्वामी पूर्णानन्द) आ पहुँचे। उनके भी उसी गोदाम में रहने और खाने के लिये तन्दूरी रोटियों तथा आलू-गोभी की सब्जी की व्यवस्था हुई। पैसे वे ही दे रहे थे और सुरेन वे पैसे तन्दूरवाले को देकर बनवाकर ले आता था।

उन्हें सेवानन्द जी के बारे में सब कुछ बताकर और पूज्य शरत् महाराज का पत्र दिखाकर संन्यासी ने अनुरोध किया कि वे चिकित्सालय का भार लेकर उसे सुव्यवस्थित कर दें और सेवानन्द जी के लौट आने पर उन्हें सौंप दें। परन्तु वे राजी नहीं हुए। उधर उनके वृन्दावन से स्वयं ही चले आने के कारण पूज्य शरत् महाराज का पत्र आया कि वे शीघ्र वृन्दावन लौट जायँ। अब क्या उपाय हो? वे अमृतसर देखने के बाद ही लौटने वाले थे, इसलिये वे अमृतसर चले गये।

अब लाहौर में रहना असम्भव हो चला था। सुरेन को बहुत समझाया गया कि वह सेवानन्दजी की प्रतीक्षा करे, पर वह बिल्कुल भी राजी नहीं हुआ। सभी वस्तुओं की एक सूची बना दी गयी और जिनके मकान के गोदाम में सामान था और हम लोग भी रहते थे, उन्हीं को वह सौंप दिया गया। सेवानन्द जी के दो-तीन परिचितों को बुलाकर उन्हें भी तालिका की प्रतिलिपि दे दी गयी। इसके लिये सुरेन उत्तरदायी हुआ। संन्यासी ने उसकी सहायता करने के लिये जाकर जो कष्ट उठाया, वह उसका अवदान था। ❖ **(क्रमश:)** ❖

❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर

१२३. ईश्वर तो सोई लखे

एक बार एक राजा स्वामी रामतीर्थ के पास आये और उनसे उलाहना भरे शब्दों में कहने लगे, "स्वामीजी, आप भगवद्-भक्ति से संसार के त्रिविध ताप हरने की बात तो कहते हैं, मगर उनका दर्शन कराने की बात कभी नहीं कहते।" स्वामीजी ने कहा, "यह कौन-सी बड़ी बात है। मैं अभी उनके दर्शन करा देता हूँ।" उन्होंने राजा को एक कागज देते हुए कहा, "आप इस पर अपना नाम और पता लिख दें।" राजा ने सिर्फ नाम लिखकर कहा, "पते की क्या जरूरत है? सभी को मालूम है कि मैं महल में रहता हूँ।"

स्वामीजी ने कहा - "बड़े झूठे है आप! महल में क्या आप अकेले रहते हैं? वहाँ तो और भी लोग रहते होंगे और वे भी अपना पता महल ही तो बतायेंगे। सच तो यह है कि वहाँ सब लोग मेहमान के रूप में ही रहते हैं। और आपने जो अपना नाम लिखा है, वह तो आपके पिता द्वारा दिया हुआ है। वे अगर दूसरा नाम रखते तो क्या आप यही नाम बताते? पते के समान ही नाम भी स्थायी नहीं होता।"

स्वामीजी ने आगे कहा, "मान लीजिये कि यदि कोई राजा आप पर आक्रमण करे और आपको पराजित करके एक भिखारी के समान दर-दर भटकने के लिये मजबूर कर दे, तब भी क्या आप अपने को राजा बतायेंगे? इस तरह आप वास्तव में वह नहीं, जो समझते हैं और जो आपका नहीं है, उसे अपना बताते हैं। इस हालत में आप ईश्वर के दर्शन की इच्छा कैसे करते हैं और वे भी आपकी इच्छा पूरी कैसे कर सकते हैं? उनके दर्शन का हकदार तो वह है जो अपना अस्तित्व नहीं मानता, जो एक विदेह की भाँति रहता और अपने सारे कार्य करता है। मैं ऐसा हूँ, मैं वैसा हूँ – ये भाव जब मन में आयें, तब आप यह जाने लें कि यह 'अहंकार' है। हम अपने नाम, पद, प्रतिष्ठा तथा अर्जित उपलब्धियों को देखकर गर्व से फूला नहीं समाते, किन्तु बाद में ऐसे प्रसंग आते हैं, जब सबका सब चला जाता है और बाद में पछताना पड़ जाता है। इसलिये उचित यह है कि उचित कर्म करते रहे, तो ईश्वर से स्वयमेव साक्षात्कार हो जायेगा।"

१२४. कबिरा सोई पीर है

एक बार सन्त बायजीद के शिष्यों ने उनसे प्रश्न किया कि उनका पीर कौन है? इस पर बायजीद ने जवाब दिया, "जंगल में रहने वाली एक बुढ़िया मेरी पीर है।" शिष्यों ने सुना तो उन्होंने आश्चर्य से कहा, "बड़े ताज्जुब की बात है कि एक जंगली बुढ़िया आपकी पीर है।" तब सन्त ने कहा, "मैं तुम्हें वह घटना ही सुनाता हूँ कि उसे मैंने पीर के रूप में कैसे चुना।" और उन्होंने बताना शुरू किया –

"एक बार मैं जंगल से जा रहा था कि राह भटक गया। अकस्मात् मुझे एक बुढ़िया दिखाई दी, जो अपनी पीठ पर एक बोरी रखकर धीरे-धीरे चलती हुई दिखाई दी। मुझे देखकर उसने कहा, 'मैं काफी बूढ़ी हो गई हूँ। यह बोझ ले जाना मेरे लिये बड़ा मुश्किल हो रहा है। अगर तुम यह बोरी मेरी झोपड़ी तक पहुँचा सको, तो बड़ी मेहरबानी होगी।' इतने में मुझे एक शेर दिखाई दिया मैंने वह बोरी उठाकर उसकी पीठ पर रख दिया और हम लोग चलने लगे। तब मैंने बुढ़िया से पूछा, 'घर जाकर तू लोगों को क्या बतायेगी?' बुढ़िया ने जवाब दिया, 'यही बातऊँगी कि आज मेरा एक जंगली और घमण्डी आदमी से पाला पड़ा था।' यह सुनते ही मुझे गुस्सा आया और मैंने पूछा, 'क्या मैं तुझे जंगली और घमण्डी दिखाई देता हूँ?' उसने तुरन्त जवाब दिया, 'जो इन्सान एक गूंगे जानवर को बेवजह तकलीफ देकर अपना बड़प्पन दिखाना चाहता है, क्या वह जंगली और घमण्डी नहीं हुआ? तू खुद बोझ न उठाकर शेर पर लाद कर यह दर्शाना चाहता है कि शेर जैसा खूंखार जानवर भी तेरा कहना मानता है।' बुढ़िया के इन शब्दों ने मुझे झकझोर कर रख दिया। उसने मुझे नसीहत दी कि खुदा के बन्दों झूठी शान से परहेज करना चाहिये और इज्जत तथा वाहवाही के चक्कर से बचना चाहिये। बस उसी दिन से मैंने बुढ़िया को अपना पीर मान लिया।"

मान-सम्मान व्यक्ति को खुशी का झूठा एहसास दिलाते हैं और अहंकारी बना देते हैं। इनसे बचना आसान नहीं, पर जो व्यक्ति इसे पनपने नहीं देता, वह सचमुच वन्दनीय है।

चरित्र ही विजयी होता है (४)

स्वामी सत्यरूपानन्द

(प्रतिवर्ष की भाँति २००५ में भी रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने 'सन्त गजानन अभियांत्रिकी महाविद्यालय, शेगाँव (महाराष्ट्र)' के अनुरोध पर विद्यार्थियों के लिये 'व्यक्तित्व-विकास एवं चरित्र-निर्माण' पर कार्यशाला का संचालन किया था। उनके इस महत्वपूर्ण व्याख्यान को उपरोक्त संस्थान ने 'Character Wins' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। सबकी उपयोगिता की दृष्टि से उसे 'चरित्र ही विजयी होता है' इस शीर्षक से हम 'विवेक ज्योति' में प्रकाशित कर रहे हैं। इसका हिन्दी अनुवाद और सम्पादन रायपुर आश्रम के ही स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

१३. अभ्यास

यह प्रकृति का नियम है – ''जिस भी विचार और कार्य की जब कई बार पर्याप्त मात्रा में दीर्घकाल तक पुनरावृत्ति की जाती है, तब वह मनुष्य का दूसरा स्वभाव बन जाता है।'' कहावत है कि 'अभ्यास व्यक्ति को पूर्ण बनाता है।' हमें यह स्मरण रखना होगा कि चरित्र के मूल्यवान एवं सार्थक गुणों की प्राप्ति का कोई सरल मार्ग (शार्टकट) नहीं है। हम यह भी याद रखें कि जब तक ये सद्गुण हमारे हृदय में प्रतिष्ठित नहीं हो जाते और हमारा दूसरा स्वभाव नहीं बन जाते, तब तक दीर्घकालीन पुरुषार्थ करने के अतिरिक्त हार्दिक पवित्रता को प्राप्त करने का दूसरा कोई मार्ग नहीं है। संसार में दीर्घकालीन अभ्यास के अतिरिक्त इस पवित्रता की प्राप्ति का दूसरा कोई विकल्प नहीं है। यदि कोई व्यक्ति सार्थक जीवन जीना चाहता है, तो उसे सद्गुणों के अभ्यास के लिये तब तक तैयार रहना होगा, जब तक वह स्वयं सद्गुणी, सदाचारी-स्वरूप नहीं हो जाता। इतना ही नहीं, बल्कि वह स्वयं ही सद्गुण स्वरूप हो जाता है।

१४. अध्यवसाय

अध्यवसाय और अभ्यास एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। किसी भी प्रकार के अभ्यास को, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, किसी के चरित्र का आवश्यक अंग बनने के लिये दीर्घकालीन अध्यवसाय अपरिहार्य है। दृढ़ प्रतिष्ठित आदत ही व्यक्ति का दूसरा स्वभाव बन जाता है।

अध्यवसाय सुविचारित और सुनियोजित होना चाहिये। जिस सद्गुण को हम प्राप्त करना चाहते हैं, उसके लिये विस्तृत रूप से योजना बनाकर हमें पुरुषार्थ करना चाहिये। हमें अपनी उन त्रुटियों को जानना चाहिये, जो हमारे मार्ग में आती हैं और उत्कृष्टता प्राप्ति की ओर अग्रसर होने में हमारे मार्ग में बाधा पहुँचाती हैं। केवल दृढ़ता पूर्वक सतत् अध्यवसाय और पुरुषार्थ के द्वारा ही हम अपने मार्ग में आने वाली इन बाधाओं को जीत सकते हैं तथा उन्हें दूर कर सकते हैं। पुरुषार्थ और दृढ़ अध्यवसाय के द्वारा ही अभ्यास पूर्णता को प्राप्त करता है। अध्यवसाय वह गुण है, जिसे प्राप्त करने के लिये भीष्म-प्रतिज्ञा की परम आवश्यकता होती है।

व्यक्ति को अपने अभ्यास के प्रति दृढ़ निश्चयी होना चाहिये और अपने अभ्यास में किसी भी प्रकार का प्रमाद नहीं करना चाहिये। इसे केवल दृढ़ता से अध्यवसाय के द्वारा ही किया जा सकता है। अध्यवसाय का तात्पर्य है, 'हाथ में लिये हुये कार्य को पूर्ण किये बिना कदापि न छोड़ना'। किसी भी समस्या के समाधान के लिये या किसी सद्गुण की प्राप्ति हेतु पुरुषार्थ कभी भी 'नहीं' को उत्तर के रूप में स्वीकार नहीं करता है। पुरुषार्थ कभी पराजय स्वीकार नहीं करता। प्रत्येक असफलता उसके सामने एक चुनौती बनकर आती है और वह उसे स्वीकार कर, जो बाधा उसके लक्ष्य-पथ में अवरोध उत्पन्न करती है, उस बाधा पर सर्वांगीण आक्रमण करता है।

व्यक्ति अध्यवसाय के गुण से सम्पन्न होकर ही जन्म नहीं लेता। अध्यवयाय एक अर्जित गुण है। इसे व्यक्ति को स्वयं ही नित्य और क्रमश: धीरे-धीरे अभ्यास के द्वारा विकसित एवं दृढ़ करना पड़ता है। कोई भी व्यक्ति रातो-रात अध्यवसायी नहीं बन सकता। इसके लिये निरन्तर कठिन परिश्रम करते रहना होगा। व्यवस्थित अध्यवसाय सदैव फलप्रद होता है। वह कभी व्यर्थ नहीं होता। विजय अध्यवसायी का जन्मसिद्ध अधिकार हो जाता है। ऐसा अध्यवसाय अभ्यास को पूर्ण बनाता है और यदि एकबार अभ्यास सम्यक् रूप से प्रतिष्ठित हो गया, तो यह मनुष्य के चरित्र का आवश्यक अंग बन जाता है तथा यह स्वाभाविक होकर स्वचालित हो जाता है। ऐसे चरित्रवान व्यक्ति के मन में जब कोई अपवित्र विचार प्रवेश करने का प्रयास करता है, तब वह तत्काल उसे बहुत दूर फेंक देता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमें अपने को सदाचारी और सच्चरित्रवान बनाने के लिये धैर्य और अध्यवसाय के गुण को साथ-साथ विकसित करना होगा।

१५. धैर्य

आओ, अब हम विचार करें कि वह कौन-सी आधार शिला है जिस पर अभ्यास, अध्यवसाय, और दृढ़ निश्चय का

महान् भवन निर्मित होता है? इसका नि:संदेह स्पष्ट उत्तर है – ''धैर्य''। धैर्य ही वह नींव है, जिस पर अभ्यास, अध्यवसाय और दृढ़ निश्चय का महान् भवन निर्मित होता है।

किम्वदन्ति है कि 'रोम एक दिन में नहीं बना था'। इजिप्ट के महान पिरामिड की कल्पना करें ! उस पिरामिड के उन निर्माताओं में कितना धैर्य था ! वर्ष-पर-वर्ष वे निरन्तर कार्य करते रहे।

याद रखें, दक्षिण भारत के विशाल मन्दिर, आगरा का ताजमहल, राजस्थान के विराट किले, जैसे – चितौड़ और जैसलमेर, महाराष्ट्र का सिंहगढ़ और देवगिरि का किला, दिल्ली और आगरा के लाल किले, ये अनन्त धैर्य, अध्यवसाय और दृढ़ निश्चय के दृष्टान्त हैं।

जब तक व्यक्ति अपने जीवन में धैर्य बढ़ाने की आदत का विकास नहीं कर लेता, तब तक वह संसार में कुछ सार्थक वस्तु पाने में सफल नहीं हो सकता, महान चरित्र-गठन की तो बात ही क्या है। स्वामी विवेकानन्द जी के शब्दों में, ''अनन्त धैर्य, अखण्ड पवित्रता और अनन्त पुरुषार्थ महत् चरित्र के निर्माण में सर्वाधिक आवश्यक गुण हैं।'' धीर व्यक्ति कठिन परिस्थितियों में भी कभी विचलित नहीं होता और अपना मानसिक संतुलन और साहस नहीं खोता। धैर्य वह सद्गुण है, जो मनुष्य को धीर और शान्त स्वभाव का बना देता है। जब तक व्यक्ति धैर्यशील और शान्त प्रकृति का नहीं होगा, तब तक वह कभी भी, किसी महत् उद्देश्य की पूर्ति के लिये सतत् कार्यशील नहीं रह सकता। बिना धैर्य के व्यक्ति उच्च चरित्र की प्राप्ति करने में कभी-भी समर्थ नहीं होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि धैर्य वह मूल आधार है, जिस पर सद्गुण और महान सच्चरित्र का भवन निर्मित किया जा सकता है।

१६. जीवन और चरित्र की समस्यायें

अब तक हमने चरित्र और उसके निर्माण के सम्बन्ध में चर्चा की। अब एक अत्यन्त प्रासंगिक प्रश्न आता है – ''जीवन की समस्याओं से चरित्र का क्या सम्बन्ध है?'' इस संसार में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसके जीवन में समस्यायें न हों। हम कह सकते हैं कि जीवन और समस्या पर्यायवाची हैं।

कुछ सम्पन्न लोगों को छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविकोपार्जन की समस्या का समाधान करना पड़ता है। इसका तात्पर्य है कि उसे इस संसार में अपने परिवार और मित्र-सम्बन्धियों के साथ सुखी रहने के लिये उसे अपने जीविकोपार्जन द्वारा गरिमा और सम्मान के साथ धन कमाना पड़ता है। हमारे देश में विशेषकर शालीनता से आजीविका प्राप्त करना एक बहुत बड़ी समस्या हो गयी है। इसके अनेकों कारण हैं। लेकिन एक बात स्पष्ट है कि प्रत्येक मालिक एक ईमानदार कर्मचारी को नियुक्त करना चाहता है। चरित्रवान व्यक्ति अपने व्यवहार और कार्यों के द्वारा दूसरे से विशिष्ट दीख पड़ता है। आजीविका प्राप्ति और बेरोजगारी की कितनी भी बड़ी कठिन समस्या क्यों न हो, किन्तु सत्यनिष्ठ और चरित्रवान लोग सदैव ही बने रहेंगे। इसलिये चरित्रवान व्यक्ति गरिमा और सम्मान के साथ अपनी आजीविका प्राप्त करने में सदा ही सक्षम रहेगा।

१७. कार्यकुशलता एवं दक्षता

हमने देखा है कि चरित्रवान व्यक्ति निरपवाद रूप से धैर्य और पुरुषार्थ के गुणों से विभूषित होता है। स्वभावत: जब कोई व्यक्ति इन दोनों मूल्यवान और अद्भुत चारित्रिक गुणों के साथ जीवन के किसी भी क्षेत्र में कोई कार्य सीखने जाता है, तब उस कार्य को सीखने में वह स्वयं को पूर्णरूप से समर्पित कर देता है और इसीलिये वह उस कार्य में दक्ष एवं निपुण हो जाता है। हम जानते हैं कि कार्यकुशल व्यक्ति के लिये जीविका प्राप्त करना कठिन नहीं होता। मनुष्य वही प्राप्त करता है, जिसके वह योग्य होता है। चरित्र व्यक्ति के कर्म को संवर्धित एवं सुदृढ़ करता है। इस प्रकार अपने सच्चरित्रता के द्वारा वह गरिमा तथा सम्मान के साथ धन अर्जित करता है।

१८. चारित्रिक संक्रमण हमारे देश की ज्वलन्त समस्या है।

हम सभी यह अनुभव कर रहे हैं कि वर्तमान में हमारा देश चारित्रिक संक्रमण से गुजर रहा है। हम देखते हैं कि राजनीति, उद्योग, अर्थ, व्यापार, शिक्षा, प्रशासन और अन्य क्षेत्रों में भ्रष्टाचार प्रबल रूप से व्याप्त हो चुका है। हमारे देश की जनता भ्रष्टाचार और कुकर्म के रक्तरंजित पंजों में दबकर क्रन्दन कर रही है।

संसद और राज्य की विधान सभाओं में भ्रष्टाचार को रोकने और बड़ी संख्या में चरित्रवान लोगों का निर्माण करने के लिये अनेकों अधिनियम और कानून बनाये गये हैं। लेकिन यदि हम इतिहास के पृष्ठों पर ध्यान दें, तो पायेंगे कि कोई भी संसद और विधान सभायें तथा कोई भी अधिनियम और काननू चरित्रवान व्यक्ति का निर्माण नहीं कर सकते।

एक प्रज्वलित दीप से ही दूसरा दीप प्रज्वलित किया जा सकता है। कितने भी कानून और 'एक प्रज्वलित दीप दूसरे दीपक को जलाता है', इस विषय पर कितना भी भाषण, एक दीप भी नहीं जला सकते। केवल एक प्रज्वलित दीप के द्वारा ही दूसरा दीप प्रज्वलित किया जा सकता है।

❖ (क्रमश:) ❖

❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑❑

कोलकाता में महाराजा अजीत सिंह

स्वामी विदेहात्मानन्द

(१८९१ ई. में स्वामी विवेकानन्द ने उत्तरी-पश्चिमी भारत का भ्रमण करते हुए राजस्थान में भी काफी काल बिताया था। उसी समय उनका खेतड़ी-नरेश अजीत सिंह के साथ घनिष्ठ सम्पर्क हुआ। तदुपरान्त वे महाराजा तथा कुछ अन्य लोगों की सहायता से अमेरिका गये। वहाँ से उन्होंने महाराजा को अनेक पत्र लिखे। कई वर्षों तक धर्म-प्रचार करने के बाद वे यूरोप होते हुए भारत लौटे। फिर भारत में प्रचार तथा सेवा-कार्य के दौरान उनका राजपुताना तथा खेतड़ी-नरेश के साथ कैसे सम्पर्क रहा, प्रस्तुत है उसी का सविस्तार विवरण। – सं.)

मद्रास से ही स्वामीजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा था। वहाँ से चलकर १९ फरवरी को वे कोलकाता पहुँचे। वहाँ भी उन्हें अनेक सभाओं तथा असंख्य लोगों से मिलने-जुलने में व्यस्त रहना पड़ा। उनके स्वास्थ्य की हालत देख कर चिकित्सकों ने उन्हें कुछ काल किसी ठण्डे स्थान में विश्राम करने की सलाह दी। तदनुसार स्वामीजी अपने कुछ गुरुभाइयों तथा शिष्यों के साथ ८ मार्च को दार्जिलिंग गये। वहीं रहते समय स्वामीजी को तार से सूचना मिली कि खेतड़ी-नरेश राजा अजीतसिंह १८ मार्च को कोलकाता आ रहे हैं और उनसे मिलने को बड़े उत्सुक हैं। महाराजा क्वीन विक्टोरिया की डायमण्ड जुबिली के महोत्सव में भाग लेने हेतु इंग्लैंड जानेवाले थे और उनकी इच्छा थी कि उनके गुरुदेव स्वामी विवेकानन्द भी उनके अतिथि के रूप में उनके साथ यात्रा करें।

स्वामीजी ने दार्जिलिंग से तार द्वारा आलम-बाजार मठ को निर्देश भेजा कि **१८ मार्च** को राजा साहब के कोलकाता पहुँचने पर मठ की ओर से उनका समुचित स्वागत किया जाय और २१ मार्च को वे स्वयं भी कोलकाता लौट रहे हैं।

१८ मार्च १८९७ ई., बृहस्पतिवार, कोलकाता

खेतड़ी राज्य के वाक्यात रजिस्टर में इस दिन निम्न-लिखित विवरण लिपिबद्ध हुआ है – श्रीजी बहादुर की सवारी औव्वल दर्जे की गाड़ी से सुबह ६ बजकर ४५ मिनट पर हावड़ा स्टेशन पर पहुँची। वहाँ लोहारू के नवाब साहब, अपने देश के सेठ महाजन दुलीचन्दजी, शिवप्रसादजी बागला आदि तथा स्वामीजी (विवेकानन्द) द्वारा भेजे गये त्रिगुणातीतानन्दजी, शिवानन्दजी आदि संन्यासी तथा अन्य सैकड़ों लोग मौजूद थे। गाड़ी ठहरते ही लोहारू के नवाब साहब से मिलकर थोड़ी बातें की, उसके बाद धीरे-धीरे चलकर चौकड़ी (चार घोड़ोंवाली बग्घी) में विराजे। सामने सेठ दुलीचन्दजी (काकरानिया) तथा शिवप्रसादजी (तुलस्यान) को बैठाया और उनके पीछे अलसीसर के ठा. चन्द्रसिंहजी, शिवदान सिंहजी लाम्यां, उनके पीछे मीरमुंशी लक्ष्मी नारायणजी, नारायण दासजी और उनके पीछे बाकी लोग।... यहाँ के सेठ लोगों द्वारा डेरे के लिये शिवबक्सजी बागला का एक चौमंजिला मकान चुना गया था, अत: सवारी बड़ाबाजार में पधारी। शोभायात्रा में पचास से भी अधिक गाड़ियाँ थीं।... मकान के द्वार के सामने गाड़ी से उतरकर ऊपर पधारे।

अगले दिन लाट साहब (गवर्नर-जनरल) की गार्डेन पार्टी में शामिल हुए। लाट साहब तथा विदेश-सचिव मि. कनिंघम से बातें हुईं। महाराज सर जितेन्द्र मोहन टैगोर से भी मिलना हुआ। (आदर्श नरेश, पृ. १५६)

२० मार्च १८९७, शनिवार, कोलकाता

वाक्यात रजिस्टर में लिखा है – सामान्य दिनचर्या के बाद महाराज आगन्तुकों से मिले और उनके साथ बातें कीं। ११ बजे वे अंग्रेजों की दुकानों में गये, वहाँ कुछ चीजें देखीं और अपनी पसन्द के अनुसार खरीदने का आदेश देते रहे।... ३ बजे के बाद डेरे में लौटे ... (बाद में) सेठ दुलीचन्द के बगीचे में पधारे।

स्वामी विवेकानन्द दार्जिलिंग में थे। उन्हें तार द्वारा सूचित करने पर सूचना आई कि वे अगले दिन ग्यारह बजे की गाड़ी से आयेंगे। महाराज उन्हें लाने के लिये स्टेशन पर जाने तथा उनके डेरे आदि के कमरे के लिये सामान आदि की व्यवस्था का आदेश देते रहे। उन्होंने महफिल में आये सेठ लोगों को आदेश दिया कि शाम को स्वामीजी के स्वागत का समारोह बड़े भव्य रूप में होना चाहिये। और सभी लोगों के साथ आप लोगों को भी स्टेशन पर पहुँचकर स्वामीजी का स्वागत करना चाहिये। एक बजे के बाद बग्घी में सवार होकर डेरे में पधारे और आराम किया।

इस दिन के प्रसंग में कुमुदबन्धु सेन ने लिखा है – "२० मार्च को मैंने पूज्यपाद स्वामी योगानन्द से सुना कि स्वामीजी अगले दिन दार्जिलिंग मेल से कलकत्ता पहुँच रहे हैं। सहसा उनके लौटने का कारण पूछने पर उन्होंने बताया, 'महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती समारोह के उपलक्ष्य में अन्य राजाओं के साथ खेतड़ी के महाराजा भी इंग्लैंड जानेवाले हैं। उनकी इच्छा अपने गुरुदेव को भी साथ ले जाने की है।

समुद्री जलवायु से स्वास्थ्य में सुधार की सम्भावना को देखते हुए स्वामीजी भी उनके साथ जाने के इच्छुक हैं।' "[१]

२१ मार्च १८९७ ई., रविवार, कोलकाता

वाक्यात रजिस्टर – सुबह की सामान्य दिनचर्या के बाद मुंशी लक्ष्मीनारायणजी तथा रामलाल मास्टर को बैरकपुर (स्टेशन) जाकर स्वामीजी का स्वागत करने का आदेश दिया।... दस बजे बग्घी में सवार होकर सेठ दुलीचन्दजी, शिवदत्त रायजी आदि के साथ सियालदह स्टेशन पर पधारे। रेलगाड़ी आकर ठहरी। श्री हुजूर (महाराजा) स्वामीजी की गाड़ी के अव्वल दर्जे के डिब्बे में पधारे, स्वामीजी को दण्डवत किया, फिर उनके पैरों का प्रक्षालन करके केसर-चन्दन का लेप किया और फूलों की माला पहनाकर (हाथ में) गुलदस्ता प्रदान किया। साथ के संन्यासियों को माला पहनाई। स्वामीजी जब प्लेटफार्म पर उतरे, तो पहले से ही स्टेशन पर स्वामीजी का स्वागत करने आये हुए लोहारू के नवाब साहब तथा नगर के अन्य मारवाड़ी लोगों ने स्वामीजी का दर्शन किया। लोगों की बड़ी भीड़ हो गयी। श्री हुजूर ने अपने मुख से एक मान-पत्र पढ़ा।

इसके बाद उन्होंने लोहारू के नवाब साहब को स्वामीजी से मिलाया। (दोनों) प्लेटफार्म से धीरे-धीरे बग्घी तक आये। लोग फूलों की वर्षा करते रहे। स्वामीजी को बग्घी में महाराजा के आसन पर बैठाया गया और वे स्वयं उनके सामने बैठकर डेरे पर पधारे। साथ में सेठ लोगों की भी करीब ५०-६० गाड़ियाँ थीं। डेरे में स्वामीजी को स्नान कराने लगे। महाराज उन सेठ-महाजनों से बातें करते रहे, जो उन्हें नजर भेंट करने के लिये एकत्र हुए थे। बाद में उन लोगों की नजर स्वीकार की गयी। स्वामीजी स्नान से निपटने के बाद दरबार में पधारकर कुर्सी पर विराजे। महाराज ने उन्हें नजर भेंट की। पूरे कमरे में गलीचे बिछे हुए थे, अतः दोनों एक साथ गलीचे पर बैठ गये। महाराज के आदेश पर सेठ लोगों ने स्वामीजी को नजर भेंट प्रदान किये।

इसके बाद लोग चले गये। स्वामीजी ने आराम फरमाया। इस बीच महाराज अपने लिये जौहरियों द्वारा लाये गये हीरे तथा जेवरात देखते रहे। स्वामीजी, उठने के बाद उपस्थित लोगों के साथ बातें करते रहे।

शाम के समय महाराज हाथ-मुँह धोने के बाद स्वामीजी के साथ बग्घी पर सवार हुए और स्वामीजी के गुरुदेव के मठ में पधारे और वहाँ भेंट प्रदान किये।

रात के लगभग आठ बजे सेठ दुलीचन्द के बगीचे में पधारे और आई हुई डाक तथा तारों को देखा। भोजन की थालियाँ आयीं। स्वामीजी ने भोजन करके विश्राम किया। महाराज ने भी करीब बारह बजे आराम फरमाया।

इस दिन की घटनाओं के विषय में कुमुदबन्धु ने लिखा है – "२१ मार्च को दार्जिलिंग मेल के पहुँचने के समय मैंने सियालदह स्टेशन पर पहुँचकर देखा तो वहाँ बड़ा अद्भुत नजारा था। बड़ाबाजार का प्रायः सम्पूर्ण मारवाड़ी समाज वहाँ उपस्थित था। उनमें से अनेक खेतड़ी नरेश की प्रजा थे। गाड़ी से स्वामीजी के प्लेटफार्म पर उतरते ही महाराजा अजीतसिंह ने उन्हें प्रणाम करके पुष्पमाला से भूषित किया। अंग्रेजी में एक छोटा-सा अभिनन्दन-पत्र भी पढ़ा गया। स्वामीजी ने दो-चार वाक्यों में ही बड़े संक्षेप में उन्हें धन्यवाद देते हुए उत्तर दिया। तत्पश्चात् वे महाराजा के साथ उनके बड़ाबाजार के निवास स्थान पर चले गये। सुनने में आया कि उसी दिन संध्या को स्वामीजी खेतड़ी-नरेश को साथ लेकर दक्षिणेश्वर तथा आलमबाजार मठ जायेंगे।

"उस दिन अपराह्न में मैं शेयर की गाड़ी में आलमबाजार जा रहा था, तभी पूजनीय मास्टर महाशय (श्री 'म') से भेंट हो गयी। गाड़ी के वराहनगर पहुँचने पर उन्होंने गाड़ीवान को हमें दक्षिणेश्वर पहुँचा देने को कहा। हम लोग जब दक्षिणेश्वर पहुँचे, तब स्वामीजी और अपने सचिव के साथ महाराजा अजीतसिंह काली-मन्दिर तथा राधाकान्त के मन्दिर में दर्शन करके श्रीरामकृष्णदेव के कमरे की ओर जा रहे थे। मास्टर महाशय के साथ ही मैंने भी उनका अनुसरण किया। श्रीरामकृष्ण के कमरे में उनका चित्र फूलों से सजा हुआ था। जिस छोटी-सी खाट पर वे बैठा करते थे, वह भी पुष्प-मालाओं से सुशोभित हो रही थी। श्रीरामकृष्ण के भतीजे रामलाल दादा आदि भी वहाँ आ पहुँचे। कमरे में जाते ही स्वामीजी उसके एक छोर से दूसरे छोर तक लोटकर साष्टांग प्रणाम करने लगे। खेतड़ी के राजा तब द्वार के सम्मुख खड़े रहे। किसी ने भी कमरे के भीतर प्रवेश करने का साहस नहीं किया। स्वामीजी ने इस प्रकार तीन बार लोटकर साष्टांग प्रणाम किया। तदुपरान्त वे हाथ जोड़कर ठाकुरजी के सामने एक किनारे खड़े हो गये और भावविभोर होकर निर्निमेष नेत्रों के साथ उनकी ओर देखने लगे। इसके बाद खेतड़ी के महाराजा आदि सभी स्वामीजी के आदर्श का अनुसरण करते हुए भूमि पर लोट-लोटकर प्रणाम करने लगे। सबका प्रणाम हो जाने पर स्वामीजी खेतड़ी-नरेश को पंचवटी की ओर ले गये।

"पंचवटी के नीचे पहुँचकर स्वामीजी एक अपूर्व भाव में विभोर हो गये। पंचवटी की प्रदक्षिणा करने के बाद उन्होंने वहाँ बैठकर थोड़ा-सा ध्यान किया। इसके बाद वे बालक के समान आनन्द व्यक्त करते हुए पंचवटी के एक वृक्ष की डाल पर बैठकर झूलने लगे। उन्होंने महाराजा को सम्बोधित करते हुए कहा, 'श्रीरामकृष्ण जब यहाँ निवास करते थे, उन दिनों हम लोग इसी प्रकार पेड़ों पर झूलते थे, आनन्द मनाते

---

१. स्मृतिर आलोय स्वामीजी, (बँगला ग्रन्थ), प्र. सं., पृ. १९७-९९

थे। आज वे ही बातें स्मृति-पटल पर उदित हो रही हैं। देखिए इस गंगातट का कैसा अपूर्व दृश्य है, कितना सुन्दर परिवेश है !' बाद में सभी लोग वहीं पर स्वामीजी के साथ बैठकर ध्यान करने लगे। लगभग आधे घण्टे बाद स्वामीजी उठे और पुन: श्रीरामकृष्णदेव के कमरे के उत्तरी ओर के बरामदे में जाकर खड़े हुए।

"उसी समय रामलाल दादा आदि पुरोहितगण ने नारियल को यज्ञोपवीत से लपेटकर स्वस्ति-वचन का पाठ करते हुए उसे पुष्पमाला के साथ महाराजा अजीतसिंह को अर्पित किया। उन्होंने भी नतमस्तक होकर उसे ग्रहण किया और अपनी श्रद्धा निवेदित की। उसी समय एक सुन्दर गौरवर्ण बलिष्ठ युवक ने आकर स्वामीजी को प्रणाम किया और उनकी चरणधूलि ग्रहण की। स्वामीजी उसकी ओर देखकर बोले, 'क्यों रे, तेरे पिताजी कहाँ हैं?' बालक ने उत्तर दिया, 'कोठी के बैठकखाने में बैठे हुए हैं।' – 'तेरे पिता आये क्यों नहीं?' बालक ने कोई उत्तर नहीं दिया। इतनी बात करने के बाद स्वामीजी महाराजा को साथ लिए गाड़ी में आलम-बाजार मठ की ओर चले गये। बाद में सुना कि वह युवक त्रैलोक्यनाथ विश्वास का पुत्र था।*

"जब मैं मास्टर महाशय के साथ **आलम-बाजार** पहुँचा, तो मठ के पूजागृह में पूज्यपाद स्वामी प्रेमानन्द ठाकुरजी की आरती कर रहे थे। मठ के साधु-ब्रह्मचारी समवेत कण्ठ से स्तोत्रों का गायन कर रहे थे। बीच-बीच में स्वामीजी के 'जयगुरु', 'जयगुरु' के हुंकार से सबके हृदय अपूर्व आध्यात्मिक भावतरंगों से उद्वेलित हो रहे थे। आरती समाप्त हो जाने पर स्वामीजी, राजा अजीतसिंह तथा बाकी सबने मन्दिर में साष्टांग प्रणाम किया। तदुपरान्त महाराजा तथा गुरुभाइयों को साथ लेकर स्वामीजी मठ के बाहरी हिस्से के लम्बे कमरे में आसीन हुए। मास्टर महाशय तथा मैं भी वहाँ जाकर बैठ गये। स्वामीजी ने खेतड़ी-नरेश का मास्टर महाशय के साथ परिचय कराया। ठाकुर की बातें तथा स्वामीजी के स्वास्थ्य को लेकर चर्चा होने लगी। स्वामीजी ने कहा, 'मेरी तो इच्छा थी कि महाराजा के साथ विलायत चला जाऊँ। जहाज में समुद्री वायु से स्वास्थ्य में सुधार हो सकता है। सभी बड़े-बड़े डॉक्टरों को दिखाकर उनका मत लिया गया, परन्तु कोई भी मेरे जाने का अनुमोदन नहीं कर रहा है। बल्कि वे लोग तो यथाशीघ्र अल्मोड़ा जाने को कह रहे हैं, क्योंकि वर्षाकाल में दार्जिलिंग की आबो-हवा ठीक नहीं रहती।'

"अजीतसिंह बोले, 'मेरा तो विश्वास है कि स्वामीजी के वर्तमान स्वास्थ्य के लिए समुद्र-भ्रमण काफी अच्छा रहेगा, पर चिकित्सकों का मत मेरी समझ में नहीं आ रहा है। अस्तु, कल अंग्रेज डॉक्टर जो कहेंगे, वही किया जायेगा।'

"तत्पश्चात् दो-एक भजन गाने के बाद स्वामीजी खेतड़ी-महाराजा के साथ उनके निवास-स्थान पर चले गये। उनके साथ प्रसाद भी भेजा गया। मास्टर महाशय तथा मैं धीरे-धीरे आलमबाजार मठ से बराहनगर तक पैदल ही चले आये।"

इसी शाम को महाराजा अजीतसिंह के आलमबाजार मठ में आगमन की एक अन्य झाँकी स्वामी विरजानन्दजी के संस्मरणों में मिलती है – "स्वामीजी से मिलने के लिए खेतड़ी के राजा ने अपने सेक्रेटरी मुंशी जगमोहन के साथ कोलकाता आकर कुछ दिन निवास किया था। महाराजा ने आलमबाजार मठ में ठाकुर-दर्शन करने के लिए आकर वहाँ हॉल में दरी के ऊपर लगे हुए बिस्तर पर स्वामीजी के सामने हाथ जोड़े, घुटने के बल बैठे काफी देर तक स्वामीजी के साथ बातें की थीं। उनका सीधा-सादा पोशाक तथा विनम्र भाव देखकर सभी लोग मुग्ध हुए थे। स्वामीजी के आदेशानुसार उस दिन उन लोगों के लिए ठाकुर को विशेष रूप से फल, मिष्ठान्न तथा हलुए का भोग देने की व्यवस्था हुई थी। सुशील (बाद में स्वामी प्रकाशानन्द) रसोईघर में हलुआ बना रहा था। अन्त में हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) ने सहसा वहाँ पहुँचकर सुशील के हाथ से खन्ती लेकर उसे एक बार चलाकर देखा कि वह मानो थोड़ा अधिक सूखा हो गया है। उन्होंने उसे उतारने को कहा। परन्तु उतारते-उतारते उसमें कड़ी गुठलियाँ पड़ गयीं। सुशील परेशान होकर कह उठा – 'महाराज, बड़े आश्चर्य की बात है, ठीक तो हो रहा था, पर ज्योंही आपने हाथ दिया त्योंही कड़ा हो गया।' हरि महाराज इसी बात को लेकर सुशील से हँसी करते थे, 'क्यों सुशील, हलुआ तो ठीक ही बन रहा था, मेरे हाथ लगाते ही वह कड़ा हो गया !' परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि वह हलुआ तो नहीं बना, पर वह एक ऐसी नई और बड़ी स्वादिष्ट चीज बन गयी कि सभी लोग उसे खाकर उसकी तारीफ करने लगे।"

२२ मार्च १८९७ ई., सोमवार, कोलकाता

वाक्यात रजिस्टर में लिखा है – "सेठ दुलीचन्द का बगीचा। प्रात:काल की दिनचर्या के बाद पोशाक धारण करते

* आज इस बात की कल्पना कर पाना बड़ा कठिन होगा कि समुद्र-यात्रा करके विदेश-गमन तत्कालीन हिन्दू समाज में कितना घोर अपराध माना जाता था। राजा साहब के साथ स्वामीजी के दक्षिणेश्वर मन्दिर में दर्शनार्थ जाने के बाद स्वामीजी की समुद्र-यात्रा को लेकर कट्टरपन्थी हिन्दुओं में एक विवाद शुरू हुआ कि स्वामीजी अब हिन्दू रह गये या नहीं। इसके बाद से समुद्र-पार जाने के अपराध में उनके लिये दक्षिणेश्वर मन्दिर में प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया था। द्रष्टव्य – युगनायक विवेकानन्द, प्रथम सं., खण्ड २, पृ. ३६९-३७२; तथा बँगला 'समकालीन भारतवर्ष', खण्ड ३, सं. १९८३, पृ. १४१-४४

२. 'अतीतेर स्मृति' (बँगला ग्रन्थ), तृतीय सं., पृ. ८४; The Story of an Epoch, Chennai, Ed. 2001, P. 62-63

समय सौरीन्द्र मोहन टैगोर आये। उन्हें यह बात बताई गयी और वे बगीचे में टहलने चले गये। महाराज के पोशाक धारण करके बाहर निकलने पर टैगोरजी भी आ गये। बरामदे में उनके साथ हाथ मिलाने के बाद उन्हें कमरे में दाहिनी ओर की कुर्सी पर बैठाया। बाईं ओर आप विराज गये। थोड़ी देर तक उनसे बातें होती रहीं। बाद में जब वे जाने लगे, तो हुजूर ने उन्हें बग्घी तक पहुँचाया। स्वामी विवेकानन्दजी से बातें करते रहे। भोजन हुआ। इसके बाद स्वामीजी मठ पधार गये और श्रीहुजूर सौदागरों के दफ्तर में पधारे।

इस दिन की घटनाओं के विषय में कुमुदबन्धु ने लिखा है – "अगले दिन अपराह्न के समय मैं (बोसपाड़ा के) श्री माँ के घर में पूज्यपाद योगीन महाराज के पास बैठा था। तभी एक वृद्ध साधु – दीनू महाराज आकर बोले, 'स्वामीजी अकेले आ रहे हैं।' उनकी बात पूरी होते-न-होते स्वामीजी आ पहुँचे। योगानन्दजी ने उन्हें देखकर आनन्दपूर्वक कहा, 'तुम आ सके हो?'

"स्वामीजी बोले, 'मेरा विलायत जाना नहीं हो सका। सभी चिकित्सक – यहाँ तक कि शशी और विपिन डॉक्टर भी मना कर रहे हैं। उनकी सलाह है कि मैं अल्मोड़ा चला जाऊँ। राजा (स्वामी ब्रह्मानन्द) आदि सबको साथ लेकर कल मैं दार्जिलिंग जा रहा हूँ। दो-चार दिनों में लौट आऊँगा। एक बार माँ को प्रणाम करता जाऊँ।'

योगीन महाराज गोलाप-माँ को पुकारकर बोले, 'स्वामीजी आये हैं, माताजी का दर्शन करेंगे।' इसके उपरान्त स्वामीजी माँ का दर्शन करने चले। हम दो-एक लोगों ने उनका अनुसरण किया। स्वामीजी तिमंजले पर जाकर माँ के कमरे के सम्मुख बरामदे में खड़े रहे। हम लोगों की ओर उन्मुख होकर वे खूब धीमे स्वर में बोले, 'तुम लोग साष्टांग प्रणाम करना, माँ के पादपद्म स्पर्श मत करना। वे इतनी करुणामयी हैं कि स्पर्श करते ही सारा पाप-ताप ग्रहण कर लेती हैं।'

गोलाप-माँ ने कहा, 'नरेन, माँ आकर सामने खड़ी हैं।' इसके साथ ही स्वामीजी दोनों बाहु फैलाकर लोट गये और साष्टांग प्रणाम किया। द्वार के सम्मुख माँ खड़ी थीं। धीरे-धीरे उठकर वे बोले, 'माँ, कल फिर दार्जिलिंग जा रहा हूँ।'

माँ ने धीमे स्वर में कहा, 'दार्जिलिंग में कैसे रहे बेटा?'

स्वामीजी ने कहा, 'माँ, वहाँ बड़ी अच्छी देखरेख में था। मुझे तो लगता है कि अब स्वास्थ्य काफी अच्छा है। वहाँ पर महेन्द्रबाबू तथा उनकी पत्नी ने मुझे बड़े यत्नपूर्वक रखा था। इस गर्मी में दार्जिलिंग खूब ठण्डा है और वहाँ भ्रमण करने में बड़ा आनन्द आता है। आजकल खूब टहलता हूँ। खेतड़ी-महाराजा के अनुरोध पर ही मैं कलकत्ता चला आया था। महाराजा ने मुझे विलायत ले जाने को मुझे पत्र लिख कर उलझन में डाल दिया था। पर यहाँ के सभी डॉक्टरों ने मुझे विलायत जाने से मना किया है। वे लोग मुझे अल्मोड़ा-नैनीताल जाने को कह रहे हैं। अत: शीघ्र ही दार्जिलिंग से लौट आऊँगा। माँ, आशीर्वाद दीजिए कि ठाकुर का जो कार्य मैंने आरम्भ किया है, उसे पूरा कर सकूँ।"

माँ ने धीमे स्वर में उत्तर दिया, "बेटा, ठाकुर तुम्हें देख रहे हैं। उन्हीं की शक्ति तुम्हारे भीतर से कार्य कर रही है। वे अपने कार्य के लिए ही तुम्हें लाये हैं।"

स्वामीजी ने कहा, "माँ, ठाकुर तो मुझे देख ही रहे हैं। तुम भी मुझ पर आशीर्वाद करो, कृपा करो। ठाकुर और तुम्हारी कृपा ही मेरा सम्बल है।" स्वामीजी ने 'जय माँ, जय माँ' – कहते हुए पुन: साष्टांग प्रणाम किया।

गोलाप-माँ ने स्वामीजी को सम्बोधित करते हुए कहा, 'माँ प्रसाद दे रही हैं।' स्वामी योगानन्द वहीं खड़े थे। वे बोले, 'यह प्रसाद स्वामीजी की गाड़ी में रख दो।'

स्वामीजी नीचे आकर बोले, 'भाई योगेन, मैं चलता हूँ। फिर आऊँगा। अब लौटकर कार्य शुरू करने के बाद ही मेरा अन्यत्र जाना होगा। डॉक्टर लोग चाहे जो भी कहें, कार्य शुरू किये बिना मैं और कहीं नहीं जाऊँगा।'

हम सबने स्वामीजी को प्रणाम किया और वे खेतड़ी महाराजा की गाड़ी में चले गये।[३]

इस प्रकार स्वामीजी ने कोई २-३ दिन राजाजी के साथ उक्त भवन में बिताया था। बीच-बीच में दुलीचन्द कांकरानिया के 'आर्किड डेल' नामक उद्यान-भवन में भी गये थे। इस दौरान हुई कुछ घटनाएँ कुछ लोगों ने लिपिबद्ध की हैं।

हरिचरण मल्लिक ने लिखा है – "कोलकाता के हैरिसन रोड़ पर मारवाड़ी बागला अस्पताल का भवन अभी हाल ही मैं तैयार हुआ था। वह एक विशाल चार-मंजिला अट्टालिका थी। खेतड़ी के राजा के लिये ऊपर का भाग किराये पर लिया हुआ था। राजा बहादुर स्वामीजी के शिष्य थे। राजा के हार्दिक निमंत्रण पर स्वामीजी ने उसी भवन की चौथी मंजिल पर उनके अतिथि के रूप में कई दिन बिताये थे। हम लोग भी सूचना पाकर वहाँ गये। हम दो युवक ऊपर की खुली छत पर टहल रहे थे। स्वामीजी ने आहट पाकर खूब जोर से पुकारा, 'नीचे आ, नीचे आ, जल्दी नीचे उतर आ ! वहाँ से गिर जाने पर साबुत नहीं बचेगा।' मास्टर महाशय के छोटे पुत्र मेरे संगी थे। स्वामीजी मेरी पीठ थपथपाते हुए बोले, 'जा, घर जा।' उनका यह सामान्य व्यवहार बड़ा सहज प्रतीत हुआ और लगा कि ये बड़े ही स्नेहशील हैं और हमारे वास्तविक संरक्षक हैं।

३. स्मृतिर आलोय स्वामीजी, पृ. १९७-९; 'प्रबुद्ध भारत' (अंग्रेजी मासिक) के अक्तूबर, १९५२

यहीं एक दिन एक बाजीगर आया। वह चाहता था कि स्वामीजी उसका राजा के साथ परिचय करा दें। वह राजाजी को कुछ जादू के खेल, हाथ की सफाई आदि दिखाना चाहता था, ताकि कुछ पैसे कमा सके। उन्होंने उसे जरा भी प्रोत्साहित नहीं किया और, 'मैं तो सन्त हूँ। दो रोटी खाता हूँ और पड़ा रहता हूँ' – कहकर गम्भीर हो गये। बाजीगर को उनके सामने खड़े रहने का साहस नहीं हुआ।

एक बार वहीं के एक ब्राह्मण पण्डित आये हुए थे – वैदिक पण्डित। उन्होंने संस्कृत भाषा में स्वामीजी को आशीर्वाद दिया। स्वामीजी उस समय एक खाट पर लेटे हुए थे। स्वामी शिवानन्द फर्श पर बैठे थे। शिवानन्दजी ने पण्डितजी से कहा, 'आप तो गृही हैं और ये परमहंस संन्यासी हैं। आपके लिये उन्हें ऐसा आशीष देना उचित नहीं है।' स्वामीजी ने दोनों की बातें सुनीं और अन्त में पण्डितजी से संस्कृत भाषा में कुछ कहने लगे। वे बातें तो अब स्मरण नहीं हैं, परन्तु उनमें से केवल एक बात याद है। उन्होंने शान्त, मगर दृढ़ स्वर में कहा था – 'सुष्ठु प्रोक्तं त्वया – आपने अच्छी बात कही।' मुझे भलीभाँति याद है कि बातचीत के बाद पण्डितजी खूब नरम हो गये थे।

बाद में स्वामीजी ने उनसे कहा, 'आलमबाजार में हम लोगों का एक मठ है। वहाँ महात्मा लोग रहते हैं। सम्भव हुआ तो उन लोगों का संग कीजियेगा।' ...

एक दिन बड़ाबाजार के खेतड़ी-राजा के उस किराये के मकान की चौथी मंजिल के कमरे में स्वामीजी लेटे हुए थे। नटी तथा चारु (मास्टर महाशय के दो पुत्र) की ओर इंगित करके हरि महाराज (तुरीयानन्दजी) (स्वामीजी से) बोले, 'इन्हें पहचान रहे हो?' स्वामीजी – 'हाँ, हाँ, खूब।' फिर उन्हीं से कहने लगे, 'क्यों रे, तुम लोगों के पिताजी कैसे हैं? चल, तुम लोगों के घर हो आऊँ।' ''[४]

कोलकाता के संगीतज्ञ बाबू श्यामलाल खत्री ने लिखा है – ''राजा साहब वीणा बजाने में बड़े निपुण थे। आपका वीणा बजाना सुनकर समझनेवाले मुग्ध हो जाते थे। एक बार आप वीणा बजा रहे थे। उस समय स्वामी विवेकानन्दजी भी मौजूद थे। स्वामीजी सिर हिलाकर दाद देने लगे। स्वामीजी ने कहा था, 'राजा साहब आप वीणा क्या बजाते हैं, मोहनी मंत्र का प्रयोग करते हैं।' ''[५]

२६ मार्च १८९७ ई., मंगलवार

वाक्यात रजिस्टर के अनुसार राजा साहब – कोलकाता से ९ बजे रात की ट्रेन से रवाना हुए।[५]

❖ (क्रमशः) ❖

४. स्मृतिर आलोय स्वामीजी (बंगला), पृ. २५७-५८

५. आदर्श नरेश, पृ. ३८०-८१

हमारा प्यारा हिन्दुस्तान

जितेन्द्र कुमार तिवारी

हमारा प्यारा हिन्दुस्तान।
आँख का तारा हिन्दुस्तान।।

मिला वेदों से इसको ज्ञान,
और उपनिषदों का आख्यान।
राम की लीला का आगार,
कृष्ण की गीता का वरदान।।
अर्हत महावीर और बुद्ध,
यहीं आये थे जगत्-सुजान।। हमारा.।।

बनाते यहीं शंकराचार्य,
वेद के मंत्रों को व्यवहार्य;
विखण्डित करके सब पाखण्ड,
किया सब भाँति अलौकिक कार्य।
मनू की स्मृतियों में लिपिबद्ध,
सफल जीवन के सूत्र-विधान।। हमारा.।।

यहीं गुरु नानकदेव महान,
मनुज को देते हैं सम्मान।
यहीं आये थे सन्त कबीर,
सत्य का करने अनुसन्धान।
नहीं मानव में कोई भेद,
सभी जन होते एक समान।। हमारा.।।

यहीं आये पैगम्बर-पीर,
खुदा के बन्दे और फकीर।
यहीं पर ईसा का सन्देश,
मिटाता है तम का प्राचीर।।
ज्ञान का फैला जब आलोक,
मिला तब मानवता को मान।। हमारा.।।

महर्षि दयानन्द जी आर्य,
यहीं करते सामाजिक कार्य।
यहीं थे परमहंस के शिष्य,
विवेकानन्द विश्व-स्वीकार्य।।
यहीं पर तुलसी-मीरा-सूर,
मीर-गालिब ने गाये गान।। हमारा.।।

महात्मा गांधी का यह देश,
अहिंसा का देता सन्देश।
यहीं के लाल-पाल औ बाल,
सदा भय को करते निःशेष।।
यहीं के अपने वीर सुभाष,
देश के लिये हुये कुर्बान।। हमारा.।।

(शेष अगले पृष्ठ पर)

सत्यकथा

हृदय का सम्बन्ध

रामेश्वर टांटिया

(लेखक १५ वर्ष की अवस्था में जीवन-संघर्ष के लिये जन्मभूमि त्यागकर कलकत्ता आये। कोलकाता की एक अंग्रेजी फर्म जे. टॉमस कम्पनी में साधारण हैसियत से काम शुरू किया। बाद में क्रमश: उन्नति करते हुए मुम्बई, असम और कोलकाता में विभिन्न उद्योग स्थापित किये। १९५७ ई. में लोकसभा के सदस्य निर्वाचित हुए और १९६६ ई. तक संसद सदस्य रहे। पाँच बार कांग्रेस पार्टी के कोषाध्यक्ष भी हुए। १९६८-७० ई. में आप कानपुर के मेयर थे। आप सुप्रसिद्ध 'ब्रिटिश इण्डिया कॉरपोरेशन' के प्रबन्ध निदेशक भी थे। आपने १९५०, १९६१, १९६४ ई. में तीन बार विदेश-यात्राएँ की। व्यवसायी तथा उद्योगपति होते हुये भी अत्यन्त सहृदय, साहित्यानुरागी तथा समाजसेवी थे। आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की। प्रस्तुत है 'भूले न भुलाए' पुस्तक के कुछ अंश। – सं.)

सेठ रामजी लाल अपने कस्बे के ही नहीं, बल्कि प्रान्त-भर के एक प्रसिद्ध व्यवसायी थे। उनके विभिन्न प्रकार के पाँच-छह कारखाने थे, जिनमें हजारों मजदूर काम करते थे। विदेशों के साथ भी उनका करोड़ों रुपयों का आयात-निर्यात का कारोबार था। व्यापार के अलावा, सार्वजनिक-क्षेत्र में भी उनका अच्छा नाम था। कई स्कूल, कालेज, छात्रावास और अस्पताल उनके द्वारा संचालित थे। वे निम्बार्क-सम्प्रदाय के वैष्णव थे, अत: उन्होंने अपनी हवेली के पास ही श्रीनाथजी का एक भव्य मन्दिर बनवाया था, जिसमें घर के हर व्यक्ति के लिये, नित्य दोनों समय जाकर प्रसाद लेना जरूरी था।

परिवार सब तरह से सम्पन्न और सुखी था, परन्तु सन्तान न होने से पति-पत्नी दुखी रहते थे। एक बार कुम्भ के पर्व पर वे तीर्थयात्रा के लिये हरिद्वार गये। वहीं उन्हें सेवा-समिति के स्वयं-सेवकों द्वारा एक-दो वर्ष का एक बच्चा मिला। सेठानी तो शिशु को गोद में लेते ही निहाल हो गई। उसका गौर-वर्ण और सुन्दर रूप-रंग देखकर ही अनुमान लगा लिया गया कि जरूर यह किसी कुलीन घराने का है। अपने गाँव में आकर खूब धूम-धाम के साथ 'गोद' लेने का अनुष्ठान किया गया। हजारों व्यक्तियों को भोजन कराया गया। इस अवसर पर एक अस्पताल और एक कॉलेज की नींव भी डाली गई। बच्चे का सुन्दर-सा नाम रखा गया – गोपाल-कृष्ण। उस समय लोगों ने भी ज्यादा पूछताछ की जरूरत नहीं समझी।

बच्चे का आना, कुछ ऐसा शुभ हुआ कि एक वर्ष के भीतर ही उनके एक पुत्री भी हो गई। धन-दौलत भी रात-दिन बढ़ती गई। इसी प्रकार सत्रह-अठारह वर्ष आनन्द से बीत गये। गोपाल और छोटी बहन – दोनों कॉलेज में पढ़ते थे, आपस में उनका सगे भाई-बहन से भी ज्यादा प्यार था। गोपाल पढ़ने के सिवा खेल-कूद में भी सदा प्रथम या द्वितीय रहता। एम. ए. में उसे कॉलेज में प्रथम स्थान मिला।

एम. ए. पास करने के बाद, वह आगे की पढ़ाई के लिये विदेश जाना चाहता था, परन्तु सेठजी उसकी शादी करके व्यापार में लगा देना चाहते थे। बहन सुमन ने अपनी एक सुन्दर और सम्पन्न सहेली का चयन कर लिया था, यहाँ तक कि उसको कई बार अपने घर बुलाकर गोपाल और माता को दिखा भी दिया था। एक तरह से बात पक्की हो गई थी, केवल 'नेगचार' की औपचारिकता होना ही बाकी था।

उस वर्ष बीकानेर के उत्तरी हिस्से में बड़ा अकाल पड़ा। हजारों लोग अपने गाँव छोड़कर पशुओं के साथ मालवा की ओर जाने लगे। सेठजी ने अपने कस्बे में उनके विश्राम के लिये व्यवस्था कर रखी थी। यात्री एक-दो दिन वहीं ठहर कर सुस्ता लेते और फिर आगे बढ़ जाते। दूसरे स्वयंसेवकों के साथ-साथ गोपाल और सुमन भी इस काम में दिलचस्पी लेते थे। एक दिन वे इसी प्रकार के एक यात्री-दल की व्यवस्था कर रहे थे कि उनमें से एक अधेड़-सा व्यक्ति, गोपाल की ओर घूर-घूरकर देखने लगा। थोड़ी देर बाद उसने अपनी पत्नी को भी बुला लिया।

सुमन ने हँसते हुए पूछा – "बाबा ! इस प्रकार आप क्या देख रहे हैं और आपकी आँखों में ये आँसू क्यों हैं?" वृद्ध थोड़ी देर तो चुप रहा, फिर सहमते हुए बोला – "बाई-सा, मेरा लड़का राम, आज से अठारह साल पहले हरिद्वार के

पिछले पृष्ठ का शेषांश

शहीदों के बल पर आजाद,
हुए हम वर्ष-हजारों बाद।
चुकाया आजादी का मूल्य,
करें हम उन वीरों की याद।
देश के हित जो करते त्याग,
वही होते सच्चे इन्सान ।। हमारा. ।।

सदा से अपना देश महान्,
मिटाना इसे नहीं आसान।
बनाकर रक्खा है अस्तित्व,
हमेशा आन-बान और शान।
देशहित जीना-मरना धर्म,
नहीं भूलें अमृत-सन्तान ।। हमारा. ।।

कुम्भ मेले में गुम हो गया था। उसका रंग भी इसी तरह साफ था। उसके बायें गाल पर भी ऐसा ही निशान था। कुँवर साहब को देखकर हमें अपने खोए हुये पुत्र की याद आ गयी है।'' घर लौटकर जब सुमन ने पिताजी को यह बात कही, तो देखा गया कि उनके चेहरे पर उदासी छा गई थी।

रात में उस वृद्ध को बुलाकर पूछताछ की गई, तो पता चला कि वे लोग जाति के चमार हैं। उस वर्ष वे लोग कुम्भ -स्नान करने हरिद्वार गये थे। वहीं उनका एकमात्र पुत्र भीड़ में खो गया, जिसका आज तक पता नहीं चला है। यह पूछने पर कि ''लड़के के कुछ और भी चिह्न थे क्या?'' वह बोला – ''उसके दायें हाथ में भी चोट का एक निशान था।''

यह सब बातें गोपाल और उसकी माँ भी सुन रही थी। उस समय तो वृद्ध को १००-२०० रुपये देकर यह कहकर विदा कर दिया गया कि तुम्हें इस प्रकार की फिजूल बातें नहीं करनी चाहिये। अच्छा तो यह होगा कि तुम लोग कल ही यहाँ से चले जाओ। परन्तु ऐसी बातें छिपी नहीं रहतीं। लोगों को, अपना हर्ज कर के भी, दूसरों के छिद्र ढूँढ़ने का शौक रहता है। यह बात धीरे-धीरे सारे कस्बे में फैल गई। इधर सेठजी और सेठानी दोनों कमरा बन्द करके भीतर बैठ गये। बहुत कहने पर भी भोजन के लिये बाहर नहीं निकले।

गोपाल हर प्रकार से योग्य और समझदार था। वस्तुस्थिति उसकी समझ में आ गई थी। वह एक निश्चय पर पहुँचकर, अगले दिन सुबह सुमन के पास जाकर कहने लगा – ''बहनजी ! जो कुछ होना था, सो तो हो गया। परमात्मा ही जानता है कि इसमें मेरा कुछ कसूर नहीं है, फिर भी मेरे कारण आप लोगों को इतना बड़ा अपमान सहना पड़ा। अब किसी तरह पिताजी और माताजी को भोजन कराने का उपाय करो, वे कल से भूखे-प्यासे हैं।''

सुमन ने देखा कि जो भाई उससे हमेशा हँसी-मजाक करता रहता और सुमन कहकर पुकारता था, वह आज 'बहनजी' कहकर सम्बोधन कर रहा है और सहमा-सा थोड़ी दूरी पर बैठा हुआ है।

उन दोनों ने बहुत अनुनय-विनय करके कमरे का दरवाजा खुलवाया और देखा कि एक दिन में ही पिताजी वृद्ध से लगने लगे हैं। माता एक तरफ अचेत पड़ी हुई हैं। अन्य दिनों की तरह आज गोपाल ने पिता के पैर नहीं छुए। कुछ दूरी से ही बोला – ''पिताजी ! ईश्वर को इतने दिनों के लिये ही मेरा-आपका सम्बन्ध मंजूर था। अब आप हिम्मत करके मुझे विदा कर दें। माताजी का बुरा हाल है, उन्हें भी सांत्वना दें। आपने जितना लिखा-पढ़ा दिया है, उससे मैं दो-तीन सौ रुपये प्रतिमाह आसानी से कमा सकूँगा।''

बहुत देर का रोका हुआ उद्वेग एक बरसाती नाले के बाँध की तरह टूट गया। इतने बड़े प्रतिष्ठित सेठ, छोटे बच्चे की तरह जोर-जोर से रोने लगे। कहने लगे – ''भले ही चमार गिना जाऊँ, परन्तु किसी हालत में भी तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। हो सकता है कि तुमने जन्म अछूतों के घर में लिया हो, परन्तु भला कोई मुझे बताये तो कि तुम्हारे जैसे धार्मिक और निष्ठा-वान युवक, ऊँची जातियों में भी कितने हैं? राम तो चौदह वर्ष के लिये ही वनवास गये थे, परन्तु तुम मुझे इस बुढ़ापे में सदा के लिये छोड़कर जाना चाहते हो?''

इधर हवेली में सुबह से ही किसी-न-किसी बहाने भाई-सम्बन्धी आकर इकट्ठे हो गये थे और झूठी सहानुभूति दिखा रहे थे। सब जानते-बूझते हुए भी – 'क्या हुआ' 'कैसे हुआ' आदि पूछ रहे थे। साथ में, युवक के सम्बन्धियों में से भी कुछ व्यक्तियों को ले आये थे।

थोड़ी देर बाद ही गोपाल उन सबके सामने आकर कहने लगा – ''आपने जो कुछ भी सुना है, वह सब सत्य है। मैं कोलायत-ग्राम के चमारों का लड़का हूँ और इसी समय यह घर तथा आपका गाँव छोड़कर कर जाने को तैयार हूँ। कृपा करके आप लोग सेठजी को क्षमा कर दें। उन्होंने जो कुछ किया है, अनजाने में किया है, फिर बड़े-से-बड़े कुसूर का भी प्रायश्चित्त तो होता ही है।''

परन्तु सेठजी, किस भी तरह गोपाल को छोड़ने को तैयार नहीं थे। आँसुओं की धारा बह रही थी। वे उसे जबर्दस्ती गले लगाकर कहने लगे – ''सुमन भी कपड़े बाँधकर तुम्हारे साथ जाने की तैयारी कर रही है, फिर भला हम अकेले इस घर में रहकर ही क्या करेंगे? किसी दूसरे गाँव में जाकर अछूतों के साथ रह लेंगे।''

गोपाल चाहता तो सेठजी की इन स्नेहपूर्ण भावनाओं का लाभ उठा सकता था, परन्तु उसने सुमन और सेठजी को अनेक प्रकार से समझा-बुझा कर वहाँ से विदा ली। अगले दिन वह एक यात्री-दल के साथ मालवा के लिये रवाना हो गया। बहुत अनुनय-विनय के बावजूद वह घर से दो-चार धोती-कुर्तों के सिवा अन्य कुछ भी साथ नहीं ले गया।

विदा के समय एक प्रकार से सारा गाँव ही उमड़ पड़ा था। कल तक इस घटना में लोग ईर्ष्यायुक्त रस ले रहे थे, परन्तु आज वे सब फूट-फूट कर रोते हुए देखे गये।

❑❑❑

माँ की स्मृति

अभय शंकर राय

(माँ श्री सारदा देवी दैवी-मातृत्व की जीवन्त विग्रह थीं। उनके अनेक शिष्यों तथा भक्तों ने उनकी मधुर-पावन स्मृतियाँ लिपिबद्ध कर रखी हैं। बँगला ग्रन्थ 'श्रीश्री मायेर पदप्रान्ते' से इस लेख का अनुवाद किया है इलाहाबाद की श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव ने। – सं.)

मेरे छोटे भाई की पत्नी हेमप्रभा को माँ से मंत्रदीक्षा मिली थी। उसी से मैंने तथा मेरी पत्नी निरूपमा ने माँ के बारे में सुना था। हम लोगों का पैतृक घर मानिकगंज जिले के (अब बाँगला देश) तेउता ग्राम में था। कोलकाता में हमारा घर यूरोपियन असाइलम लेन (अब अब्दुल हालिम लेन) में है।

मेरी दीक्षा लेने की कोई इच्छा नहीं थी। मेरे भाई की पत्नी के माध्यम से मेरी पत्नी निरूपमा को माँ से दीक्षा लेने की व्यवस्था हुई थी। माँ के निर्देशानुसार निर्दिष्ट दिन को खूब सबेरे मैं अपनी पत्नी के साथ बागबाजार में माँ के पास पहुँचा। मैं पहले ही बता चुका हूँ कि मेरी स्वयं दीक्षा लेने की कोई इच्छा ही नहीं थी। पर उस दिन रात के अन्तिम पहर में एक अद्‌भुत घटना घटी। उस समय मैं अपने बिस्तर पर ही था। अर्धजाग्रत अर्ध-निद्रित अवस्था में मैंने देखा कि ठाकुर मेरे सामने खड़े हैं। वे मुझसे बोले, "अभी भी तेरी द्विधा नहीं मिटी? जा, जा, तू भी एक ही साथ दीक्षा ले ले।" इतना कहकर वे अदृश्य हो गये। ठाकुर का दर्शन पाकर और उनकी बातें सुनकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। लेकिन साथ-ही-साथ थोड़ा शंकित भी हुआ, क्योंकि थोड़ी देर बाद ही पत्नी को लेकर बागबाजार जाने की बात थी। उसकी दीक्षा के लिये आवश्यक सभी चीजों की व्यवस्था की गयी थी, पर मेरे लिये तो नहीं हुई थी! इतनी जल्दी मैं वह सब कैसे जुटा सकूँगा? अस्तु, स्वप्न में पाये ठाकुर के निर्देशानुसार पत्नी को लेकर मैं माँ के घर पहुँचा। माँ को प्रणाम करते ही माँ ने स्नेहपूर्ण स्वर में कहा, "अब तो तुम्हें कोई द्विधा नहीं है बेटा! जाओ गंगा में नहाकर आओ। बहू की चीजों से ही तुम दोनों की दीक्षा होगी।" माँ की ये बातें सुनकर मैं अपने आँसू रोक नहीं सका। मेरे मन में बारम्बार यही बात आ रही थी – माँ को कैसे मेरी समस्या तथा मेरे स्वप्न की बात ज्ञात हुई? तो क्या वे सचमुच ही जगदम्बा हैं, अन्तर्यामिनी हैं? यथासमय मेरी और पत्नी की माँ से दीक्षा हो गयी। यह घटना १९१० ई. की है।

दुख की बात यह है कि जिसके चलते हम दोनों को माँ के श्रीचरणों में स्थान मिला था, मेरी वही भ्रातृवधू हेमप्रभा कम आयु में ही दो पुत्रों को छोड़कर काल कवलित हुई। हेमप्रभा की मृत्यु के कुछ वर्ष बाद ही उसके दोनों पुत्र भी चल बसे। बड़े सुन्दर व्यक्तित्व वाली, सुसंस्कार युक्त तथा मातृगत-प्राणा हेमप्रभा को माँ का बड़ा स्नेह मिला था। हमारे परिवार पर हेमप्रभा का प्रभाव विशेष उल्लेखनीय है।

मेरी पत्नी निरूपमा को भी माँ का बड़ा स्नेह मिला था। १९१५ से १९२० ई. के दौरान करीब ४०-४५ पत्र मिले थे। मेरा बड़ा पुत्र और पुत्री प्रायः बीमार रहते थे। उनके स्वस्थ होने की कामना से निरूपमा माँ का आशीर्वाद माँगती। माँ भी करुणार्द्र होकर ठाकुर का आशीर्वाद लिख भेजतीं। ... माँ के अधिकांश पत्र जयरामबाटी से और मालिनी दीदी के हाथ के लिखे हैं। इसके सिवा रासबिहारी महाराज और ब्रह्मचारी ज्योति प्रकाश के हाथ की लिखी चिट्ठियाँ भी हैं।

ठाकुर ने (स्वयं को दिखाते हुए) माँ से कहा था – "इसने कितना किया है? तुम्हें इससे काफी अधिक करना होगा।" माँ के जीवन पर विचार करने पर हम लोग पाते हैं कि सचमुच माँ ने ठाकुर के लीला-संवरण के बाद कितना काम किया है! कितने आर्त, असहाय और दुखी मनुष्यों के जीवन को शीतल किया है! जैसे हमें माँ की ४०-४५ चिट्ठियाँ मिलीं, वैसे ही माँ के अन्य शिष्यों को भी मिली होंगी। माँ के पत्रों में शिष्य-सन्तानों के लिये उनकी ममता और व्याकुलता बड़े ही ज्वलन्त रूप से प्रस्फुटित हो उठी है। माँ की अन्तिम बीमारी के समय, मेरी पत्नी द्वारा लिखे गये पत्र के उत्तर में बागबाजार स्थित 'माँ के घर' से उत्तर मिला, "माँ की अवस्था पूर्ववत् है। किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं, दिन में दो बार बुखार चढ़ता है। पेट और पैर की सूजन कुछ कम हुई है। इस अष्टमी तथा एकादशी के बीतने के पूर्व कुछ भी नहीं कहा जा सकता।" पत्र में दिनांक है – ८ जुलाई १९२०। इसके मात्र १२ दिनों बाद ही माँ ने अपनी स्थूल देह का परित्याग कर दिया।*

❖ (क्रमशः) ❖

* उद्‌बोधन, वर्ष ९८, अंक ११, अग्रहायण १४०३, पृ ३८

क्रोध पर विजय (५)

स्वामी बुधानन्द

(हमें अपने जीवन में प्राय: ही अपने तथा दूसरों के क्रोध का सामना करना पड़ता है, परन्तु हम नहीं जानते कि क्रोध क्या है, इसकी उत्पत्ति कैसे और कहाँ होती है, और उस पर कैसे नियंत्रण किया जाय। इसी विषय को लेकर रामकृष्ण संघ के एक विद्वान् संन्यासी स्वामी बुधानन्द जी ने १९८२ ई. में रामकृष्ण मिशन के दिल्ली केन्द्र में अंग्रेजी में एक व्याख्यान-माला प्रस्तुत की थी। बाद में ये व्याख्यान मद्रास मठ के आंग्ल मासिक 'वेदान्त-केसरी' में धारावाहिक रूप से और अन्तत: एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुए। आधुनिक जीवन में उनकी उपादेयता को देखते हुए 'विवेक-ज्योति' में हम उसका हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रस्तुत कर रहे हैं। – सं.)

अपने क्रोध को भूखा रखो

जो लोग आग को बुझाने के विषय में गम्भीर हैं, उन्हें इसको ज्वलनशील पदार्थों का भक्षण नहीं कराना चाहिये। एक क्रोधी व्यक्ति को अपने क्रोध में ईंधन नहीं डालना चाहिये। पाला-पोसा हुआ अहंकार ही, दूसरों के छिद्रान्वेषण में आनन्द लेकर और स्वयं के दोषों को नजरन्दाज करके क्रोध में ईंधन डालता है। ये सभी हमारे उस आन्तरिक भ्रम की अवस्था के लक्षण हैं, जिसे अज्ञान कहते हैं।

अज्ञान का नाश करने के लिये नैतिक जीवन अनिवार्य है। जगत् के साथ हमारे व्यवहार में शील (सदाचार) और प्रज्ञा (अन्तर्दृष्टि पैदा करनेवाला आत्मविश्लेषण) – दोनों को साथ-साथ चलना चाहिये। एक उत्तम हृदय तथा प्रबुद्ध मन में क्रोध आसानी से नहीं बढ़ता।

सम्यक् प्रयास

स्थायी रूप से क्रोध पर विजय पाने के लिये व्यक्ति को एक विशेष स्वभाव का निर्माण तथा स्थायी आदत बनाने की जरूरत है। यह स्वभाव तथा आदत एक अर्जित सच्चरित्रता पर आधारित होनी चाहिये। बुद्ध द्वारा उपदिष्ट उत्कृष्ट अष्टांग मार्ग का उद्देश्य है एक आदर्श मानव का पुनर्निर्माण करना। इसके लिये व्यक्ति की अविकसित अवस्था से उसका आत्म-पूर्णता में रूपान्तरण करने की आवश्यकता है और यह किसी दण्ड के भय से नहीं, अपितु संसार-बन्धन से मुक्त होने की इच्छा के फलस्वरूप होना चाहिये।

आर्य अष्टांग मार्ग की साधनाएँ निम्नलिखित हैं – सम्यक् या उचित दृष्टिकोण, उचित इच्छाएँ, उचित वाणी, उचित आचरण, उचित आजीविका, उचित प्रयास, उचित सजगता और उचित ध्यान।

अष्टांग मार्ग की इन विविध साधनाओं को एक-दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। तो भी क्रोध पर विजय पाने के लिये सम्यक् या उचित प्रयास विशेष उपयोगी है। अत: सम्यक् प्रयास की अवधारणा को ठीक से समझना जरूरी है।

सम्यक् प्रयास के अन्तर्गत आता है – मन में उठती हुई बुरी भावनाओं का दमन करना, उठी हुई दुर्भावनाओं का नाश करना, भली भावनाओं को प्रोत्साहित करना और जगी हुई भावनाओं को पूर्णता प्रदान करना। यह मानसिक खेती की शुरुआत है। मानव-मन के कुसंस्कारों से निपटने के लिये, बुराइयों तथा वासनाओं-कामनाओं का उन्मूलन करने के लिये; और चेतन मन तथा हमारे जटिल मनो-दैहिक यंत्र के अन्य अंगों के बीच सन्तुलन बनाये रखने के लिये, आत्म-विश्लेषण की आदत एक प्रभावी उपाय है।

मनुष्य, न केवल दूसरे के प्रति, अपितु स्वयं के प्रति भी मिथ्याचारी और धोखेबाज है। जीवन में हम जिन आदर्शों को अपनाते हैं, वह सर्वदा शुद्ध तथा नि:स्वार्थ उद्देश्यों के कारण नहीं होता, बल्कि हम उन्हें जीवन में एक तरह की कटुता या असफलता के बोध के कारण अपनाते हैं। अपना अहंकार घायल हो जाने, अपना प्रेम अनुत्तरित रह जाने या अपमानजनक दैहिक विकलांगता का कष्ट पाने के कारण हम प्रतिकारी या अत्याचारी बन जाते हैं।

हममें से बहुत-से लोग यंत्रों के समान हैं। हमारे विचारों तथा अनुभूतियों में पुनरावृत्ति होती रहती है। हमारा क्रोधी स्वभाव एक स्वचालित यंत्र के समान है, जिससे प्रयास के द्वारा प्रभावी ढंग से निपटा जा सकता है। आत्म-विश्लेषण के द्वारा हम इस यंत्रवत् स्वचालित क्रिया को तोड़ने का, मन द्वारा आदत की प्रक्रिया पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति को नष्ट करने की और आत्मा को प्रकट करने की चेष्टा करते हैं। आध्यात्मिक उन्नति में बुरी कामनाओं के समान ही आलस्य तथा ढिलाई भी हानिकारक हैं। अतएव यह जानना आवश्यक है कि सम्यक् प्रयास का कैसे उपयोग किया जाय।

धम्मपद के उपदेश

अब तक हुई चर्चा के आलोक में हम सुप्रसिद्ध धर्मग्रन्थ 'धम्मपद' में प्राप्त भगवान बुद्ध के उपदेशों को समझ सकते हैं। कोई भी गम्भीर व्यक्ति इन सहज उपदेशों का अभ्यास कर सकता है। इनमें से कुछ उपदेश निम्नलिखित हैं –

(१) व्यक्ति क्रोध को त्याग दे, अहंकार को त्याग दे, समस्त जागतिक आसक्तियों के परे चला जाय। जो व्यक्ति नाम-रूप में आसक्त नहीं है और जो किसी वस्तु में 'मेरा' का

भाव नहीं रखता, उसे दु:ख नहीं उठाने पड़ते –

क्रोधं त्यजेद् दूरमथापि मानं
संयोजनं सर्वमतिक्रमेच्च ।
असक्तमेनं खलु नामरूपे-
ष्वकिंचनं नानुपतेच्च दु:खम् ।।

(२) जो व्यक्ति विपथ हुए रथ की ही भाँति अपने उदीयमान क्रोध को सन्तुलित कर लेता है, उसी को मैं सच्चा सारथी कहता हूँ; बाकी लोग तो केवल लगाम पकड़नेवाले ही है –

य: समुत्पतितं क्रोधं रथं भ्रान्तं धारयेत् ।
तमहं सारथिं ब्रूयां रश्मिग्राहा: परे जना: ।।

(३) व्यक्ति क्षमा के द्वारा क्रोध पर विजय प्राप्त करे, भलाई के द्वारा बुराई को जीते; उदारता के द्वारा कृपणता को जीते और सत्य के द्वारा मिथ्यावादी पर विजय प्राप्त करे –

अक्रोधेन जयेत्क्रोधम् असाधुं साधुना जयेत् ।
जयेत्कदर्यं दानेन सत्येनालीकवादिनाम् ।।

(४) व्यक्ति को सत्य बोलना चाहिये, क्रोध के वशीभूत नहीं होना चाहिये और कुछ माँगे जाने पर दे देना चाहिये। इनके द्वारा वह निश्चित रूप से देवताओं के बीच में स्थान प्राप्त करता है –

भणेत्सत्यं न च क्रुध्येद्दद्यात्किमपि याचित: ।
स्थानैरेतैस्त्रिभिर्युक्तो देवानामन्तिकं व्रजेत् ।।

(५) हे अतुल, आज की नहीं, एक बड़ी पुरानी उक्ति है – लोग मौन रहनेवाले की निन्दा करते हैं, लोग अधिक बोलने वाले की निन्दा करते हैं और लोग अल्पभाषी की भी निन्दा करते हैं। इस जगत् में ऐसा कोई नहीं, जिसकी निन्दा न होती हो –

अतुलैतत्पुराणं हि नैतदद्यतनं भूवि ।
निन्दन्ति तूष्णीमासीनं निन्दन्ति बहुभाषिणम् ।
निन्दन्ति मित-वक्तारं नास्ति लोके ह्यनिन्दित: ।।

(६) जिसकी केवल निन्दा ही होती हो, या जिसकी केवल प्रशंसा ही होती हो, ऐसा व्यक्ति न कभी होगा, न हुआ और न इस समय विद्यमान है –

न भविष्यति नैवाभून्नैवाद्यापि हि विद्यते ।
एकान्तं निन्दितो लोके एकान्तं वा प्रशंसित: ।।

(७) क्रोध हमारे शरीर, वाणी तथा मन को उत्तेजित कर देता है और उसके बाद हम इनके द्वारा, न केवल दूसरों पर, बल्कि उससे भी अधिक स्वयं पर आघात कर सकते हैं। इसलिये उन्होंने ये उपदेश दिये –

रक्षेत् प्रकोपं कायस्य कायेन स्यात्सुसंवृत: ।
कायदुश्चरितं हित्वा चरेत्कायेन सत्कृती: ।।

– अपने शारीरिक क्रोध से सावधान रहो और अपने शरीर को नियंत्रण में रखो। शरीर के दुष्कर्मों का त्याग करो और शरीर के द्वारा सत्कर्म करो।

वाच: प्रकोपं रक्षेच्च भवेद्वाचा सुसंवृत: ।
वाचो दुश्चरितं हित्वा वाचा सुचरितं चरेत् ।।

– अपनी वाणी के क्रोध से सावधान रहो और अपने वाणी को संयमित करो। वाणी के पापों का त्याग करने के बाद वाणी के द्वारा पुण्य का अभ्यास करो।

मन:प्रकोपं रक्षेच्च मनसा संवृतो भवेत् ।
मनोदुश्चरितं हित्वा मनसा सत्कृतिं चरेत् ।।

– मन के क्रोध से सावधान रहो और मन का नियमन करो। मन के पापों को त्यागकर मन के द्वारा पुण्य का अभ्यास करो।

ये विशिष्ट चेतावनियाँ इसलिये दी गयी हैं कि क्रोधी व्यक्ति की यह सामान्य प्रवृत्ति है कि वह अपने क्रोध के पात्र को तन-मन तथा वाणी से आघात पहुँचाना चाहता है। परन्तु मूल बात तो यह है कि मन ही वह केन्द्रीय माध्यम है, जो क्रोध को अन्य अंगों के द्वारा व्यक्त करने को प्रेरित करता है। इसलिये चेतना की ऐसी स्थिति विकसित करना आवश्यक है जिससे मन में क्रोध का उदय ही न होने दिया जाय।

इस महत्त्वपूर्ण बिन्दु पर भगवान बुद्ध का एक उपदेश है, जो क्रोध पर विजय पाने की दृष्टि से तो उपयोगी होने के साथ ही पूरी मानवता को भी एक विशेष सन्देश देता है।

सद्भाव का मूल (कोसाम्बी सुत्त)

एक बार जब बुद्ध कोसाम्बी गये, तो उन्हें वहाँ भिक्षुओं के बीच चल रहे मनमुटाव की जानकारी मिली। उन्होंने विवाद करनेवाले भिक्षुओं को अपने पास बुलाया और उन्हें इन शब्दों में सम्बोधित किया –

"भिक्षुओ, तुम लोग आपस में झगड़ रहे हो और एक-दूसरे पर कटाक्ष कर रहे हो, क्योंकि सम्भवत: तुम्हें चेतना के उन स्तरों के विषय में ज्ञान नहीं है, जो सामंजस्य तथा शान्ति के लिये उपयोगी हैं।

"भिक्षुओ, एकता और सामंजस्य में सहायता करनेवाले चेतना के छह स्तर हैं।"

बुद्ध ने आगे कहा – "(१) अपने संगियों के प्रति सद्भाव के कार्य। (२) सच्चाई के साथ कहे गये सद्भाव के शब्द। (३) सच्चे दिल से पालित सद्भाव पूर्ण विचार। (४) रोटी के अन्तिम टुकड़े तक, तुम्हारे पास जो कुछ भी है, उसका दूसरों के साथ मिलकर उपयोग करना। (५) अपने उच्चतर जीवन के विशुद्ध गुणों को दूसरों के साथ साझी सम्पत्ति समझना। (६) प्रेम के उत्तम तथा रक्षक गुण के द्वारा अपने आसपास की सभी बुराइयों को दूर करना।

चेतना के ये छह स्तर हैं, जो अपने आप में मित्रतापूर्ण

तथा सम्माननीय होने के साथ ही सहमति, सामंजस्य तथा प्रेम को उत्पन्न करते हैं।

भिक्षुओ, सुनो, चेतना के ये छह स्तर परम ज्ञान तक ले जाते हैं। इनमें से प्रत्येक क्रमश: एक कदम आगे ले जाता है; और यद्यपि आगे भी कुछ करने को बाकी है, तथापि तुम्हारे कदम पीछे न हटें।''

यह बात निश्चित है कि जो कोई भी उपर्युक्त सुत्त में कथित सहज किन्तु अनमोल सिद्धान्तों का इमानदारी के साथ अपने दैनन्दिन जीवन में अभ्यास करेगा, वह अति शीघ्र क्रोध पर विजय पाने में समर्थ होगा। पूरे विश्व को, व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्तर पर अपने सर्वनाश से बचाने के लिये इन उपदेशों की आवश्यकता है।

महान् मेत्त सुत्त (मैत्री सुक्त)

भगवान बुद्ध का एक अन्य उपदेश भी है, जो क्रोध को जीतने की चेष्टा में हमारा मार्ग-दर्शन करेगा और एक ऐसा स्वभाव विकसित करने में सहायक होगा, जिससे नाराज होने की प्रवृत्ति का ही लोप हो जायेगा। उत्पन्न हुए क्रोध पर नियंत्रण करना तथा विजय पाना निश्चय ही अच्छी बात है, परन्तु उससे अच्छा तो यह होगा कि हम एक ऐसा मन रखें, जिससे सभी दिशाओं में सभी प्राणियों के लिये केवल प्रेम तथा आनन्द ही प्रवाहित होता हो। यह उपदेश मेत्त सुक्त के नाम से परिचित है और कहते हैं कि इसे मगध के सम्राट् बिम्बीसार के प्रति कहा गया था। भगवान बुद्ध की शिक्षा थी कि जो कोई भी अपना तथा दूसरों का भला चाहता है, उसे यह सार्वभौमिक प्रेम का स्वभाव विकसित करना चाहिये –

''सभी प्राणी सुखी हो, सुरक्षित हों और प्रसन्नचित्त हों। जितने भी प्राणी हैं – जो दुर्बल हैं या सबल, जो विशाल हैं या महान्, जो मध्यम आकार के हैं या छोटे, जो सूक्ष्म हैं या स्थूल, जो दूरस्थ हैं या निकटस्थ, जो विद्यमान हैं या भविष्य में पैदा होनेवाले हैं – वे सभी सुखी हों।

''कोई भी किसी अन्य को धोखा न दे। कोई किसी का अपमान न करे। कोई भी क्रोध या नाराजगी के कारण किसी अन्य के हानि की कामना न करे। जैसे एक माता, अपने प्राणों की परवाह न करते हुए अपने पुत्र की रक्षा करती है, वैसे ही प्रत्येक व्यक्ति को सभी प्राणियों के प्रति असीम मैत्री भाव का पोषण करना चाहिये।

''व्यक्ति को घृणा तथा शत्रुता के भाव से बाधित हुए बिना, विश्व के ऊपर-नीचे तथा तिर्यक लोकों के भी समस्त प्राणियों के प्रति सद्भाव – एक असीम मित्रतापूर्ण सद्भाव का पोषण करना चाहिये।

''खड़े रहते, चलते, बैठे या लेटे हुए – व्यक्ति जब तक जागता रहे, इस प्रकार का भाव बनाये रखे। इसी को ब्रह्म में विहार कहते हैं।''

कितने अद्भुत विचार हैं ! इन शब्दों का श्रवण तक मन के लिये कितना उन्नयनकारी तथा प्रेरणादायी है ! इस मेत्त सत्त के अर्थ पर ध्यान करने से प्रत्येक व्यक्ति अपने हृदय में इसके शान्तिपूर्ण प्रभाव का अनुभव कर सकता है। जो लोग इन शिक्षाओं को आत्मसात् करके इन्हें अपने चरित्र में प्रकट करेंगे, वे सहज ही क्रोध पर विजय पाकर ऐसे प्रेम तथा आनन्द के स्रोत बन जायेंगे, जो सबको धन्य करनेवाला है।

६. पाश्चात्य सन्तों के उपदेश

वे क्या कहते हैं

बाइबिल के पुराने नियमों में हम पाते हैं कि जब पैट्रियाक जोसेफ ने अपने भाइयों को मिस्र से पश्चिमी फीलिस्तीन के कैनान में स्थित अपने पिता के घर भेजा, तो उन्हें केवल एक ही सलाह दी थी – ''मार्ग में क्रोधित मत होना।''

सन्त फ्रांसिस डी सेलेस, अपने एक निष्ठावान शिष्य को जोसेफ की इस महत्त्वपूर्ण सलाह को उद्धृत करते हुए लिखते हैं – ''यह दुखमय जीवन – आनेवाले सुखमय जीवन की ओर एक यात्रा है। मार्ग में हमें एक-दूसरे पर क्रोधित नहीं होना चाहिये, बल्कि हमें अपने बन्धुओं तथा मित्रों की टोली के साथ विनयपूर्वक, शान्तिपूर्वक तथा प्रेमपूर्वक आगे बढ़ना चाहिये।... किसी भी बहाने क्रोध को अपने हृदय में प्रविष्ट मत होने दो।''

सन्त जेम्स लिखते हैं – ''इसलिये, मेरे प्यारे भाइयो, प्रत्येक व्यक्ति सुनने में तेज हो, परन्तु बोलने में धीमा हो और नाराज होने में धीमा हो। क्योंकि मनुष्य का क्रोध किसी दैवी सद्गुण की अभिव्यक्ति नहीं है।''

सन्त आगस्टाइन कहते हैं – ''क्रोध चाहे थोड़ा भी हो, न्यायपूर्ण तथा उचित भी हो, तो उसे प्रवेश देने की अपेक्षा मना कर देना ही बेहतर है। क्योंकि एक बार प्रवेश पा लेने के बाद उसे बाहर निकालने में बड़ी कठिनाई होती है। यह एक छोटी-सी टहनी के रूप में प्रवेश करता है और बात-की-बात में बढ़कर एक तने का रूप धारण कर लेता है।''

इफेसियन लोगों को एक पत्र में सेंट पॉल लिखते हैं – ''... तुम्हारे क्रोध के साथ सूर्यास्त न हो।''

इस उपदेश का तात्पर्य यह है कि यदि मन क्रोध को प्रश्रय देता है, तो वह इससे घृणा को उत्पन्न करेगा और उससे छुटकारा पाना अत्यन्त कठिन है। क्रोध के पास, उसे पुष्ट करने के लिये हमेशा ही हजारों झूठे बहानों का अम्बार लगा रहता है। ''अब तक ऐसा कोई भी क्रोधी व्यक्ति नहीं हुआ, जिसने सोचा हो कि उसका क्रोध अनुचित था।''

इसीलिये सन्त फ्रांसिस डी सेलेस लिखते हैं – ''क्रोध के

अल्प मात्रा में तथा विवेकपूर्ण उपयोग का बहाना करने की अपेक्षा, बिना क्रोध के रहने का उपाय ढूँढ़ने का प्रयास करना कहीं बेहतर है। अपनी अपूर्णताओं तथा दुर्बलताओं के कारण जब कभी हम पर सहसा क्रोध का आवेश चढ़े, तो उसके साथ संवाद करने की अपेक्षा उसे शीघ्रतापूर्वक भगा देना ही उत्तम है। जैसे यदि कोई सर्प किसी प्रकार कहीं अपना सिर घुसा ले, तो वह सहज ही उसमें अपना पूरा शरीर खींच लेता है, वैसे ही यदि कभी तुम क्रोध को थोड़ा-सा भी मौका दोगे, तो वह तुम्हारा स्वामी बन जायेगा।''

क्रोध को दूर करने के उपायों के विषय में सेंट फ्रांसिस डी सेलेस लिखते हैं – ''पहली बार चेतावनी मिलते ही शीघ्रतापूर्वक – हड़बड़ी में नहीं, हलचल के साथ नहीं; अपितु सौम्यता तथा गम्भीरतापूर्वक अपनी सेना को तैनात करो।'' इस वाक्य की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं – ''कुछ संसदों तथा विधान-सभाओं में हम देखते हैं कि उनके अनुशासनकर्ता चिल्ला रहे हैं – 'शान्ति रखिये, शान्ति रखिये' और इस प्रकार वे उन लोगों से भी अधिक शोर मचा रहे हैं, जिन्हें कि वे शान्त करना चाहते हैं। फिर प्राय: ऐसा भी होता है कि हड़बड़ी में अपने क्रोध पर नियंत्रण करने का प्रयास करने पर, हम अपने हृदय में पहले से स्थित क्रोध से भी अधिक तनाव उत्पन्न कर लेते हैं; और इस प्रकार विक्षुब्ध हुआ हृदय स्वयं का स्वामी नहीं रह सकता।'' आधुनिक समाज में हम देखते हैं कि हिंसा के द्वारा पृथ्वी पर शान्ति लाने के प्रयास निरर्थक सिद्ध हो रहे हैं। शान्ति केवल शान्तिपूर्वक ही आ सकती है।

पहले से ही उत्थित क्रोध को दूर करने के लिये डी सेलेस कहते हैं कि हमें शीघ्रतापूर्वक निम्नलिखित पद्धति से कार्य करना होगा – ''ईसा के शिष्यों ने समुद्र-यात्रा के समय आँधी-तूफान में अपनी नौका को डाँवाडोल होने पर जो कुछ किया था, हमें भी उसी प्रकार ईश्वर से सहायता के लिये याचना करनी होगी।'' यह उक्ति बाइबिल के नये नियम में वर्णित एक घटना के सन्दर्भ में है। ईसा तथा उनके कुछ शिष्य एक नौका में समुद्र-यात्रा कर रहे थे। जब ईसा गहरी निद्रा में सो रहे थे, तभी समुद्र में भीषण तूफान उठा और नौका झँकोरे खाने लगी। ''और उनके शिष्यों ने जाकर उन्हें जगाया और बोले, 'प्रभो, हम तो मरे; हमें बचाइये।' ईसा ने कहा, 'अविश्वासियो, तुम लोग इतने डरे हुए क्यों हो?' तब वे उठे और तूफान तथा समुद्र को डाँटा; और तब वहाँ महान् शान्ति छा गयी।'' जब हम अपने भीतर सुप्त ईश्वर को पुकारेंगे, तो वे जागेंगे और हमारी उत्तेजनाओं को शान्त हो जाने का आदेश देंगे।

जहाँ तक साधक का प्रश्न है, उसके जीवन में क्रोध, न तो उचित हो सकता है और न ही न्यायसंगत ठहराया जा सकता है। तथापि यदि कभी हमें क्रोध का शिकार बनना भी पड़ जाय और यदि हम ईसा के निम्नलिखित उपदेश का निष्ठा तथा उत्साहपूर्वक अपने जीवन में पालन कर सकें, तो हम उनके अनुभव का अपने आध्यात्मिक कल्याण के लिये उपयोग कर सकते हैं – ''अपने शत्रुओं से प्रेम करो, तुम्हें अभिशाप देनेवालों की शुभकामना करो, तुमसे घृणा करनेवालों की भलाई करो, तुम्हारा अपमान करनेवालों तथा सतानेवालों के लिये प्रार्थना करो।''

सेंट फ्रांसिस डी सेलेस उठे हुए क्रोध को शान्त करने के लिये हमें जो सलाह देते हैं, वह पतंजलि की इस शिक्षा के समानान्तर प्रतीत होता है – ''कठिन परिस्थितियों में उनके विपरीत उपाय अपनाने होंगे।'' सेलेस कहते हैं – ''इसलिये हमें क्रोध को तत्काल उसके विपरीत भाव – विनम्रता के द्वारा दुरुस्त करना होगा। लोग कहते हैं कि ताजे घाव आसानी से भर जाते हैं।''

विनम्रता

बाइबिल के 'नये नियम' में लिखा है – ''यदि तुम वेदी पर चढ़ावा लेकर आओ और वहाँ तुम्हें याद आये कि मेरा भाई किसी कारण मुझसे नाराज है, तो तुम अपनी भेंट को वहीं वेदी के सामने ही छोड़ दो और वापस चले जाओ; पहले अपने भाई के साथ मेल करो और तब अपना चढ़ावा अर्पित करो।'' क्रोध व्यक्ति की आध्यात्मिक सम्भावनाओं के लिये अत्यन्त हानिकारक है। इस विनाशकारी विष से जितनी जल्दी छुट्टी पा ली जाय, उतना ही उत्तम है।

जिस समय हमें ज्ञात रहता है कि हमें देखा जा रहा है, उस समय हममें से अधिकांश लोग ठीक-ठीक आचरण कर सकते हैं; परन्तु चरित्र की सच्ची कसौटी यह है कि हम लोकदृष्टि से परे रहते समय कैसा व्यवहार करते हैं। जब तक हम सप्रयास आत्म-नियंत्रण के द्वारा अच्छी आदतें नहीं डाल लेते, तब तक असावधानी के समय हमारे अन्तर्निहित संस्कार प्रकट होकर हमें कठिनाई में डाल देते हैं।

ऐसे लोग बहुधा जीवन में असफल रह जाते हैं, जो लोगों के समक्ष तो देवतुल्य प्रतीत होते हैं, परन्तु अपने घरों में आसुरी आचरण करते हैं। इन सार्वजनिक जीवन के 'देवता' और घरेलू जीवन के 'असुर' लोगों को गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये कि यदि वे अपने घरेलू जीवन में भी देवता बन सकें, तो उनके सुखों में कितनी वृद्धि हो जायेगी !

❖ (क्रमश:) ❖
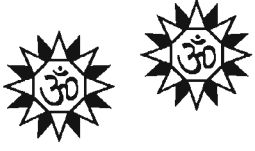
पातञ्जल-योगसूत्र-व्याख्या (११)
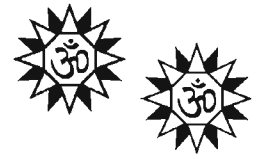
स्वामी प्रेमेशानन्द

(माँ श्री सारदा देवी के वरिष्ठ शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी ने १९६२ ई. के फरवरी माह में अपनी अस्वस्थता के दौरान वाराणसी में अपने सेवक को पातञ्जल योगसूत्र पढ़ाया था। इनके पाठों को सेवक एक नोटबुक में लिख लेते थे। बाद में सेवक – स्वामी सुहितानन्द जी ने उन पाठों को सुसम्पादित कर एक बँगला ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित कराया। 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ पातञ्जल योग जैसे गूढ़ विषय पर इस सहज-सरल व्याख्या का हिन्दी अनुवाद रायपुर आश्रम के स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ।।११ ।।

– जब मन के द्वारा विविध प्रकार के विषय-ग्रहण की चेष्टा दूर हो जाती है और केवल एक विषय में जब मन एकाग्र हो जाता है, तब चित्त का समाधि-परिणाम होता है।

शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चितस्यैकाग्रता-परिणामः ।।१२ ।।

– जब मन अतीत और वर्तमान दोनों अवस्थाओं को एक साथ ही ग्रहण करने में समर्थ हो जाता है, तब चित्त का एकाग्रता-परिणाम होता है।

व्याख्या – पूर्वोक्त समाधि के द्वारा मन को बाह्य विषयों से खींचकर किसी एक विषय में संलग्न करने, एकाग्र करने की क्षमता आती है। इस प्रकार बहुत दिनों तक अभ्यास करते-करते मन स्थिर रहने का अभ्यस्त होता है। किन्तु एकबार समाधिस्थ होने के बाद, मन को बीच-बीच में छोड़ देने पर, पुनः उस समाधि-अवस्था में वापस जाने के लिये बहुत कष्ट सहन करना पड़ता है। अर्थात् अविच्छिन्न भाव से निरन्तर समाधि का अभ्यास करना होगा तथा समाधि का बार-बार अभ्यास कर उसे सहज स्वाभाविक संस्कार में परिणत कर लेना होगा।

मन एक बार संयमित, नियन्त्रित हो जाने पर चारों ओर भागने की उसकी आदत दूर हो जाती है तथा स्थिर होकर एक विषय में एकाग्र होना, उसे अच्छा लगता है।

पूर्ण एकाग्रता का लक्षण है – जब मन का निरोध होता है, जब मन स्थिर रहता है, तब समय का बोध नहीं होता है। सामान्य लोगों में भी देखा जाता है कि मन के स्थिर होने पर उन्हें समय का बोध कम रहता है। उपन्यास पढ़ते-पढ़ते पूरी रात बीत जाती है, उसका कुछ भी बोध नहीं रहता।

एक वस्तु ही अनेकों रूप धारण कर संसार के रूप में प्रतीत हो रही है। एक को अनेक रूपों में देखने की वासना, इच्छा के कारण ही हमलोग मनुष्य का जन्म ग्रहण करते हैं। उसके कारण हमलोग संसार-तत्त्व को समझ नहीं पाते हैं, केवल संसार के सुख एवं साथ-ही-साथ दुख का ही अनुभव कर पाते हैं। इस सुख-दुख के हाथों से मुक्त होने का उपाय है – इस दृश्य जगत संसार का मूल आधार एकत्व (परमात्मा) का आभास मिल जाने पर, भोग-लालसा की निवृत्ति हो जाती है। एक सुन्दर महिला अनेकों प्रकार से नृत्य कर रही थी। जो लोग उसे देख रहे थे, उस नारी के साथ किसी का भी कोई परिचय नहीं था। जब वह नृत्य समाप्त कर स्थिर बैठ गयी, तब उसके साथ बात करने के बाद एक दर्शक को यह जानकारी हुई कि यह महिला उनकी ही निकटस्थ सम्बन्धी है, स्वजन है। यह जानने के बाद उनकी काम-इच्छा शान्त हो गयी। नर्तकी के अंग-संचालन की मधुरिमा से उसके साथ जो भोग-इच्छा जागृत हुई थी, वह निवृत हो गयी, शान्त हो गयी।

समाधि या योग और साधना के द्वारा जब मन इन्द्रियों से वापस आकर आत्मप्रतिष्छित होता है, तब प्रकृति के मूल तत्त्व को जानने के कारण रूप-रस आदि के प्रति आकर्षण की, उनकी भोगेच्छा की निवृत्ति हो जाती है एवं यह अनुभव होता है कि बाह्य संसार और हमारा Apparent self (देह-मन-बुद्धि) एक ही वस्तु है। इसमें कोई भोग्य-भोक्ता नहीं है। इसे जान लेने पर ज्ञान-प्राप्ति के मार्ग के सभी विघ्न दूर हो जाते हैं। समाधि-प्राप्ति का यही उद्देश्य है। मन के निरोध करने की शक्ति होने पर क्रमशः चिदाकाश के सभी तत्त्वों को जाना जा सकता है तथा उसके कारण वैराग्य होता है, एवं अनात्म वस्तु के प्रति आकर्षण दूर हो जाता है। इसलिये आत्मज्ञान-प्राप्ति का एकमात्र उपाय है – एकाग्रता।

एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ।।१३ ।।

– इसके द्वारा (परिणाम-भेद के द्वारा) भूत और इन्द्रियों के धर्म, लक्षण और अवस्था[1] नामक परिणाम के सम्बन्ध में व्याख्या की गई।

शान्तोदिताव्यपदेश-धर्मानुपाती धर्मी ।।१४ ।।

– अतीत, वर्तमान और भविष्य धर्म, जिसमें अवस्थित हैं, उसे धर्मी कहते हैं।

१. मन सर्वदा वृत्ति में परिणत होता है, उसे 'धर्म' नामक परिणाम कहते हैं। मन सदा अतीत, वर्तमान और भविष्य, इन तीनों कालों में विचरण करता रहता है, इसलिये इसे 'लक्षण' नामक परिणाम कहते हैं। निरोध-संस्कार और व्युत्थान-संस्कार में एक प्रबल और दूसरा दुर्बल होने पर उसे 'अवस्था' नामक परिणाम कहते हैं। मन के परिणामत्रय की तरह ही भूत और इन्द्रियों के त्रिविध परिणाम होते हैं।

क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ।।१५ ।।

– क्रम के विभिन्नता के कारण परिणाम भी विभिन्न प्रकार के होते हैं।

परिणामत्रय संयमादतीतानागतज्ञानम् ।।१६ ।।

– पूर्व वर्णित तीनों परिणामों में चित्त-संयम करने से अतीत और भविष्य का ज्ञान होता है।

व्याख्या – इन्द्रियाँ और इन्द्रिय-ग्राह्य वस्तुयें सभी विभिन्न प्रकार की अवस्थाओं के परिवर्तन-काल में भी सक्रिय रहती हैं। किसी एक सीमा में उपस्थित होने पर हम उसे समझ सकते हैं। किन्तु समाहित-चित्त योगी अपनी सूक्ष्म दृष्टि की सहायता से भूत और इन्द्रियों के इस सूक्ष्म परिवर्तन और परिणति की अवस्था को प्रत्यक्ष देख सकते हैं। उसके कारण वे अतीत और भविष्य को जान सकते हैं। जैसे ज्योतिषी लोग राशि-नक्षत्र की गणना कर मनुष्य के अतीत जीवन की घटना और भविष्य में होनेवाली घटनाओं, सम्भावनाओं को बता सकते हैं, वैसे ही योगी लोग भी इस समाधि के द्वारा वैसा कर सकते हैं।

शब्दार्थ-प्रत्ययानामितरेतराध्यायात्-संकरस्तत्प्रविभाग-संयमात् सर्वभूतरुतज्ञानम् ।।१७ ।।

– शब्द, अर्थ और ज्ञान इन तीनों के परस्पर अध्यस्त, आरोपित या मिथ्या भ्रम होने के कारण 'संकर'[२] अवस्था की प्राप्ति होती है। उनके प्रभेदों के ऊपर चित्त का संयम करने से सभी प्रणियों के द्वारा उच्चारित शब्दों के अर्थ का ज्ञान होता है।

व्याख्या – जब हमलोग किसी की बात सुनते हैं, तब उसकी वागेन्द्रिय स्पन्दित होकर आकाश में एक प्रकार की तरंग उत्पन्न करती है, जो तरंग हमलोगों के कान के भीतर एक स्थान पर आघात करती है। मन उसे बुद्धि के पास पहुँचाता है। पूर्व-संस्कारों की सहायता से बुद्धि उन बातों का अर्थ समझ लेती है। इन क्रियाओं पर हम ध्यान नहीं दे पाते हैं। हमलोग सोचते हैं कि उसने कहा और हमने सुनकर समझ लिया, बस इतना ही तो। किसी व्यक्ति की बात सुनने में, इतनी बड़ी जटिल प्रक्रिया है, उसका कुछ भी हम समझ नहीं पाते। किन्तु योगी संयमित मन की सहायता से इन सब क्रियाओं का स्पष्ट अनुभव कर सकता है। उसके फलस्वरूप किसी प्राणी के द्वारा किसी शब्द का उच्चारण करने पर, वे उस शब्द का अर्थ समझ सकते हैं, लेकिन भाषा समझना सम्भव नहीं होता। ऐसा सुना जाता है कि श्रीरामकृष्ण बचपन से पशु-पक्षियों की वाणी का अर्थ समझ पाते थे।

संस्कार-साक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् ।।१८ ।।

– संस्कारों का साक्षात्कार कर लेने पर, संस्कारों की स्मृति का बोध होने पर पूर्वजन्म का ज्ञान होता है।

व्याख्या – समाहितचित्त योगी सूक्ष्म दृष्टि की सहायता से पूर्व कर्मों के कारण चित्त में जो संस्कार संचित हैं, उसे वे स्पष्ट देख पाते हैं। संस्कारों के कारण हैं – पूर्व जन्म के कर्म। इसीलिये इन संस्कारों को देखकर पूर्व जन्मों की सभी बातें वे जान सकते हैं।

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ।।१९ ।।

– दूसरे व्यक्ति के शरीर के चिह्नों पर चित्त-संयम करने पर उस व्यक्ति की मानसिक अवस्था, मनोदशा को जाना जा सकता है।

न च तत् सालम्बनं तस्याविषयी भूतत्वात् ।।२० ।।

– किन्तु इस चित्त का आलम्बन जाना नहीं जा सकता, क्योंकि वह संयम का विषय नहीं है।

व्याख्या – मुहँ, आँख के भाव को देखकर सामान्य लोग भी कई बार मनोदशा को थोड़ा-सा समझ लेते हैं। किन्तु योगी उसे सम्पूर्ण रूप से और बिना भूल के जान सकते हैं। लेकिन जिसके कारण आँख-मुँह की यह अवस्था है, (उसका यह भाव है) उसे केवल लक्षण देखकर ही नहीं जाना जाता, उसे जानने के लिये योगी को उस व्यक्ति के चित्त में मन का संयम करना होगा, एकाग्र करना होगा।

कायरूपसंयमात्तद्-ग्राह्य-शक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशाऽसम्प्रयोगेऽन्तर्धानम् ।।२१ ।।

– शरीर के रूप के ऊपर संयम करके, इस रूप के अनुभव करने की शक्ति को रोककर, दर्शन-शक्ति, देखने की शक्ति के साथ उसका संयोग नष्ट कर देने से, योगी लोगों के सामने से अदृश्य हो सकते हैं, अन्तर्धान हो सकते हैं।

एतेन शब्दाद्यन्तर्धानमुक्तम् ।।२२ ।।

– इसके द्वारा शब्दादि के अन्तर्धान होने के सम्बन्ध में भी व्याख्या की गयी।

व्याख्या – योगी अपने शरीर को ऐसी अवस्था में ला सकते हैं कि सबके सामने रहते हुये भी, वे अदृश्य हो सकते हैं।

❖ **(क्रमशः)** ❖

२. संकर – योगसूत्र की व्याख्यानुसार इसका अर्थ होता है – अभिन्न ज्ञान। यद्यपि शब्द, अर्थ और ज्ञान ये तीन हैं, लेकिन भ्रम के कारण उस समय एक समान अभिन्न प्रतीत होते हैं। इसे ही 'संकर' अवस्था कही गयी है।
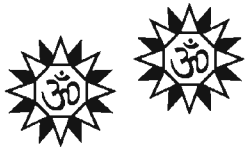
स्वामी विवेकानन्द के संस्मरण
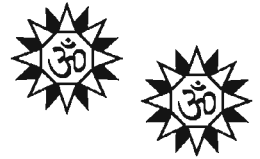
केट सैनबॉर्न

(धन्य थे वे लोग, जिन्होंने स्वामीजी के काल में जन्म लिया तथा उनका पुण्य सान्निध्य प्राप्त किया। उनके प्रत्यक्ष सम्पर्क में आनेवाले अनेक लोगों ने अपनी अविस्मरणीय स्मृतियाँ लिपिबद्ध की हैं, जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं तथा ग्रन्थों में प्रकाशित हुई हैं। प्रस्तुत संस्मरण अद्वैत आश्रम द्वारा प्रकाशित 'Reminiscences of Swami Vivekananda' ग्रन्थ से गृहीत तथा अनुवादित हुआ है। – सं.)

(स्वामीजी का अमेरिकी महाद्वीप पर प्रथम पदार्पण कनाडा के वैंकुअर बन्दरगाह पर हुआ। वहाँ से रेलगाड़ी पर सवार होकर उन्होंने शिकागो की यात्रा की। रेलगाड़ी के उसी डिब्बे में एक महिला पत्रकार – कैथरिन या केटे सैनबॉर्न भी यात्रा कर रही थीं। वह बॉस्टन के पास के एक गाँव – ब्रिजी मिडोज के कृषि-फार्म में निवास करती थीं, जो बॉस्टन नगर से करीब २५ मील दूर स्थित मेटकॉफ नामक कस्बे के पास था। अमेरिका में स्वामीजी से परिचित होनेवाले व्यक्तियों में सम्भवत: वे पहली थी। उन्होंने ही स्वामीजी का प्रोफेसर राइट से परिचय कराया था, जिनकी सहायता से उन्हें शिकागो की धर्म-महासभा में हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व करने का अवसर प्राप्त हुआ। श्रीमती सैनबॉर्न ने अपने ये संस्मरण – 'Abandoning an Adopted farm' – नामक पुस्तक में लिखकर १८९४ ई. में न्यूयार्क से मुद्रित कराया था। इन्हें वहीं से संकलित किया गया है। – सं.)

पिछली गर्मियों में जब मुझे अद्‌भुत विद्या-बुद्धि-सम्पन्न वक्ता तथा मानवप्रेमी संन्यासी को अतिथि के रूप में पाने का सौभाग्य हुआ, तभी से उत्तेजना अपने चरम पर जा पहुँची।

पिछली गर्मियों में कैनेडियन पैसिफिक रेलगाड़ी के आबजर्वेशन कार[1] में मेरी उनसे भेंट हुई थी। शिकागो के लिये मेरी उस यात्रा के दौरान पहाड़ों, खाइयों, हिमनदों और महाद्वीप के बीच स्थित उच्च पर्वतमाला भी, विदेशी पर्यटकों की ओर से मेरी दृष्टि को पूर्णत: आकृष्ट नहीं कर सकी थी, जिनमें थे – भारत के पारसी, कैंटन के करोड़पति व्यापारी, न्यूजीलैंड-वासी, पुर्तगाली तथा स्पैनिश व्यापारियों के साथ विवाहित फिलीपीन द्वीपों की सुन्दर महिलाएँ, अपनी सुसंस्कृत पत्नियों तथा सुशिक्षित पुत्रों के साथ उच्च कुल के जापानी अधिकारी, आदि आदि।

मैंने सभी के साथ बातें कीं। उन लोगों ने सप्रेम मुझे अपने देश आने का निमंत्रण दिया और मैंने भी नि:संकोच भाव से, बड़े उत्साहपूर्वक सबको अपने ग्रामीण आवास के बारे में बताया और प्रत्येक को अपना कार्ड दिया, जिस पर 'मेटकॉफ, मेसाचुसेट्स' का मेरा स्थायी पता मुद्रित था।

मैंने बॉस्टन तथा उसके आसपास के महत्त्वपूर्ण नर-नारियों का उल्लेख किया, जो प्राय: ही मेरे अतिथि हुआ करते थे और सबको आश्वस्त किया कि मेरे कृषिफार्म में उन सबका हार्दिक स्वागत होगा।

परन्तु मैं सर्वाधिक प्रभावित हुई थी उन लम्बे कदवाले संन्यासी से, जो पौरुष के एक भव्य उदाहरण थे। वे साल्विनी के समान सुन्दर थे, उनकी चाल ऐसी प्रभावी तथा राजकीय थी मानो वे पूरे ब्रह्माण्ड के सम्राट् हों; उनकी मृदु काली आँखें उत्तेजित होने पर आग उगलती थीं और कोई मजेदार प्रसंग उठने पर आनन्द से नृत्य करने लगती थीं।

उन्होंने कई मीटर लम्बी एक चटक पीले रंग की पगड़ी लगा रखी थी; शरीर पर अपने जीवन-दर्शन का प्रतीक गेरुए वस्त्र धारण कर रखे थे, जो गुलाबी रंग के एक चौड़े तथा भारी कमरबन्द से बँधा हुआ था; कत्थई रंग की धोती और भूरे रंग के जूते – कुल मिलाकर यही उनकी वेशभूषा थी।

वे मुझसे कहीं अच्छी अंग्रेजी बोलते थे; प्राचीन तथा आधुनिक साहित्य से सुपरिचित थे; शेक्सपियर, लॉंगफेलो, टेनिसन, डार्विन, मूलर या टिंडल के ग्रन्थों से अनायास तथा सहज भाव से उद्धरण देते थे; हमारी बाइबिल के पृष्ठ-दर-पृष्ठ सुना सकते थे; और सभी सम्प्रदायों की जानकारी तथा उनके प्रति सद्भाव रखते थे। उनका सान्निध्य स्वयं में एक शिक्षा, एक अनुभूति और एक दिव्य अभिव्यक्ति थी।

उनसे विदा लेते समय मैंने कहा कि यदि वे संयोगवश बॉस्टन आयें, तो वहाँ मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ विद्वान् तथा सुसंस्कृत नर-नारियों से उनकी मुलाकात कराऊँगी।

हम विदा हुए। लौटकर मैं विश्व-मेले से सम्बन्धित शारीरिक तथा बौद्धिक परिश्रम से थक गयी और बीमार भी पड़ गयी। विविध विचार-धाराओं तथा विचित्र वेश-भूषाओं

१. अमेरिका के ट्रेनों की अन्तिम बोगी के रूप में लगनेवाला डिब्बा, जिसमें बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ होतीं और उस में बैठकर यात्री मार्ग की दृश्यावली का अवलोकन कर सकता है। (द्र. वेब्सटर डिक्सनरी)

वाले विविध प्रकार के लोगों के साथ हुई वह मुलाकात एक अतिरंजित कल्पना मात्र बन कर रह गयी।

मैं बीमारी भोगकर थोड़ी स्वस्थ हो रही थी कि मुझे ४५ शब्दों का एक टेलीग्राम मिला जिसमें सूचित किया गया था कि आबजर्वेशन ट्रेन में मिले सम्माननीय अतिथि बॉस्टन के क्विंसी हाउस में ठहरे मेरी अनुमति की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

तब मुझे स्पष्ट रूप से स्मरण हो आया कि मैंने उनसे अनुरोध किया था कि यदि कभी वे एकाकी महसूस करें या सहायता की जरूरत पड़े, तो मेरा आतिथ्य ग्रहण करें। मैंने उनसे वादा किया था कि मैं उनका लेखन तथा चर्चा की प्रतिभा से सम्पन्न हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों, कांकार्ड के दर्शन-शास्त्रियों, न्यूयार्क के धनवानों; और प्रसिद्ध, सम्पन्न तथा उच्च समाज की महिलाओं से परिचय करवा दूँगी। परन्तु अगस्त का मध्य काल चल रहा था और नगर में ऐसी कोई भी शख्सियत विद्यमान न थी, जिनके साथ मैं अपने इन रंग-बिरंगी पोशाक से सज्जित विद्वान् संन्यासी को मिलवाती। मैं बड़ी दुविधा में पड़ी, तो भी मैंने साहसपूर्वक एक तार भेज दिया – 'आपका तार मिला। बॉस्टन से अल्बानी के लिये ४.२० पर छूटनेवाली ट्रेन से आज ही आ जाइये।'

गाड़ी जब प्लेटफार्म पर आयी, तो कर्णभेदी सीटी की आवाज में भी मानो उपहास का सुर था। मैं यह सोचकर भयभीत थी कि ट्रेन पकड़ने के लिये एकत्र लोगों की भीड़ पर उनका क्या प्रभाव पड़ेगा। परन्तु लोगों ने रुद्ध श्वास के साथ चुपचाप उन्हें देखा। वे ऐसे ही विलक्षण व्यक्ति थे!

(आगे चलकर शिकागो में) सभी देशों से आकर एकत्र हुए लोगों के बीच यदि वे राजोपम परन्तु विचित्र प्रतीत हुए थे, तो आज गूजविले स्टेशन पर वे अति अद्भुत प्रतीत हुए थे। उनके साथ इतना अधिक सामान था कि ट्रेन अगले स्टेशन पर १० मिनट देर से पहुँची। वे अपने साथ मानो एक बोड्लियन ग्रन्थालय[२] ही ले आये थे, जो जटिल तथा दुर्लभ थीं और दोनों ही दृष्टियों से वजनी थीं।[३]

इस बार उनकी पीली पगड़ी और भी अधिक चमकीली दीख रही थी। और उनके लाल लबादे के साथ गहरे लाल-गुलाबी रंग का कमरबन्द मेल नहीं खा रहा था। लगता था कि वे उस स्थान (ब्रीजी मिडोज) की सहजता तथा शान्ति को देखकर कुछ-कुछ विस्मित हुए हैं, परन्तु भद्रता के चलते वे इस विषय में कुछ बोले नहीं।

मुझे स्पष्ट दिखता था कि लोग उन्हें घूरकर देखते हैं और कटाक्षपूर्वक मुस्कुराते हैं, पर वे उस ओर जरा भी ध्यान नहीं देते थे। इस विषय में वे मुझसे बोले – 'तो क्या मैं अपने पूर्वजों की पोशाक को त्याग दूँ?'' और मेरे समक्ष एक समुचित प्रश्न भी रखा – 'यदि तुम कभी भारत जाओ, तो क्या तुम हमारी महिलाओं की भाँति साड़ी पहनोगी?' वस्तुत: अपनी अशिष्टता तथा अज्ञान के कारण ही हम सोच लेते हैं कि हमारी अपनी परम्परा से भिन्न हर चीज विचित्र, हास्यास्पद तथा गलत है। रोज टेरी कुक ने मुझे बताया कि पहले वह जिस कस्बे में रहती थी, वहाँ के लोग प्रत्येक अपरिचित को 'विदेशी' कहा करते थे; और जिस लहजे में उस शब्द का प्रयोग होता था, उससे द्वेष तथा असम्मान का भाव व्यक्त होता था। वैसा ही मेरे इस 'विदेशी' के साथ भी हुआ।

पर अगली सुबह तो उत्तेजना चरम बिन्दु पर जा पहुँची। उस समय वे बरामदे में आसीन अपने गहनतम ध्यान में डूबे हुए थे, या यों कहें कि अपने क्रियाशील मन से सारे विचारों को निकालते हुए उसमें दिव्य आलोक तथा भावों को प्रवाहित करने का प्रयास कर रहे थे। जब वे वहाँ इस प्रकार शून्य तथा स्थिर नेत्रों के साथ अचल भाव से बैठे हुए निर्वाण -जैसी की अवस्था को लाने की चेष्टा कर रहे थे, तभी बिल हैनसन पीछे से घूमकर मेरे अतिथि के पास आया और उनकी ओर घूरते हुए विस्मय तथा उपहास के स्वर में उनसे बोल उठा, ''अहा, क्या चीज है! मैडम को यह चीज कहाँ से मिली और उसने इसे बनाया कैसे?''

उसे लगा था कि वह मेरे द्वारा निर्मित एक पूर्ण आकार की मोम की मूर्ति या कपड़ों का एक विशाल गुड्डा है, जिसे रंगकर लोगों को प्रभावित करने तथा विस्मय में डालने के लिये मैंने वहाँ रख दिया है। इसकी मैं भला कैसे कल्पना कर सकती थी! इसलिये आगे मैं जो सच्ची घटना बताने जा रही हूँ, कृपया आप उस पर पूरी तौर से विश्वास करें।

तब मेरे लिये बड़ा संकटपूर्ण तथा संकोच की घड़ी आ पहुँची, जब मेरे प्राच्य देशीय आगन्तुक ने मधुर, पर निराशा एवं शंकापूर्ण आवाज में पूछा – 'वे प्रभावशाली सज्जन तथा महिलाएँ कहाँ हैं, जिनसे आपने मिलाने का वादा किया था? मुझे उनसे मिलना ही होगा और अपने देश की दुर्दशाग्रस्त जनता के लिये कार्य आरम्भ करना होगा।'

मेरे सारे विद्वान् मित्र समुद्र-तट पर, झीलों के किनारे या पर्वतीय स्थलों पर छुट्टियाँ मनाने गये हुए थे। अगले दिन सुबह मैंने उन सबको इस अपील के साथ पत्र डाल दिये कि वे वापस लौटकर मेरी सहायता करें। वे लोग आये और बड़ी सज्जनता के साथ आकर हमसे मिले। इस प्रकार बिना सोचे-समझे असावधानी में दिया गया मेरा वचन परम सन्तोषजनक रूप से पूरा हुआ।

एक संध्या की बात याद करके मैं हँसे बिना नहीं रह

(शेष अगले पृष्ठ पर)

२ इंग्लैंड के आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय का सुप्रसिद्ध ग्रन्थालय

३. मुम्बई में मुंशी जगमोहनलाल ने सम्भवत: स्वामीजी के लिये बहुत-सी पुस्तकें भी खरीदकर उनके साथ भेज दी थीं, ताकि वे सुदीर्घ यात्रा के दौरान तथा अमेरिका में भी उनका अध्ययन कर सकें।

मुख्यमंत्री श्री रमनसिंह जी का व्याख्यान

विगत १३ जनवरी, मंगलवार को शाम ६ बजे छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री डॉ. रमनसिंह जी ने 'विवेकानन्द जयन्ती समारोह' का उद्घाटन किया। तदुपरान्त आश्रम में आयोजित भाषण प्रतियोगिताओं में प्रथम स्थान पानेवाले छात्र-छात्राओं के व्याख्यान हुए। उक्त अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में सभा को सम्बोधित करते हुए मुख्यमंत्रीजी ने कहा –

''बच्चों के मुँह से जो वाणी निकल रही थी, उसमें कितनी ओजस्विता थी! हमने स्वामी विवेकानन्दजी की वाणी तो नहीं सुनी, पर हम लोगों का सौभाग्य है कि हमें स्वामी आत्मानन्दजी और स्वामी सत्यरूपानन्दजी की वाणी को सुनने का सुयोग मिला है। बचपन से लेकर अभी तक देखते, सुनते और समझते हुए, इस राजनीति के क्षेत्र में जहाँ बहुत-से दलदल हैं, जिसे लोग 'काजल की कोठरी' कहते हैं, उसमें रहकर मैं यदि थोड़ा-सा भी ठीक-ठाक काम कर लेता हूँ, तो कुछ-न-कुछ संस्कार मुझे यहाँ से मिला है। इसलिये बचपन से लेकर अभी तक, स्वामी आत्मानन्दजी का, स्वामी सत्यरूपानन्दजी का और इस पूरे परिसर में स्थित लोगों का, कितनों का नाम गिनाऊँ, मैं इन सबका आभारी हूँ। यदि हम लोग कुछ ठीक-ठाक कर पा रहे हैं और मन में अच्छा करने की सोच है, तो यह मुझे मिले हुए संस्कारों के कारण है। जब मुझे इस कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में बोलने को कहा गया, जहाँ इतने बड़े-बड़े लोग बैठे हैं, तो मुझे अजीब लगता है। बच्चों से बोलने को कहना तो ठीक है, क्योंकि उनकी बहुत अच्छी तैयारी थी। मैं दुनिया में हर जगह अच्छा बोल लेता हूँ, पर यहाँ जहाँ स्वामी सत्यरूपानन्दजी महाराज बैठे हों और ऐसे लोग बैठे हों, तो बोलने में थोड़ी दिक्कत होती है। अत: मुझे ज्यादा कुछ कहने की जरूरत नहीं है। खासकर नारायणपुर आश्रम के बारे में जो प्रतिवेदन यहाँ प्रस्तुत किया गया, उसे यहाँ बैठकर समझना बड़ा कठिन है। नारायणपुर में, और अन्दर अबूझमाड़ में शिक्षा, स्वास्थ्य, तथा आंगनबाड़ी का जो काम चल रहा है, वह प्रशंसनीय है। उस क्षेत्र में न प्रशासन है, न कोई तंत्र, न सरकार, न पुलिस, न पटवारी; आपको सुनकर ताज्जुब होगा कि आजादी के बाद से लेकर अभी तक, पहली बार हम उस पूरे अंचल का दो-ढाई हजार वर्ग किलोमीटर के एक-एक इंच का सर्वे कराने में सफल हुये हैं, वह भी इसरो के माध्यम से। यह सूचना मैं यह बताने के लिये दे रहा हूँ कि जहाँ आश्रमवासी काम कर रहे हैं, उस क्षेत्र की कैसी गम्भीरता है! वहाँ एक किलोमीटर जाना भी कितना कठिन है! सामान्यत: यदि दूसरा कोई व्यक्ति भीतर घुस जाय, तो उसे चिन्ता रहती है कि वह वहाँ से लौटेगा या नहीं। वहाँ शिक्षा के, चिकित्सा के काम खड़ा करना आसान काम नहीं है। यहाँ प्रतिवेदन पढ़कर हमने थोड़ी तालियाँ बजा दी, लेकिन मैं जानता हूँ, वहाँ काम करना आसान नहीं है।

नारायणपुर का स्कूल जहाँ छह-सात सौ बच्चे पढ़ रहे हैं। आदिवासी क्षेत्र अबूझमाड़ के माड़िया बच्चों के लिये सैकड़ों किलोमीटर दूर आकर शिक्षा पाने की दिक्कत थी। वहाँ स्कूलों

पिछले पृष्ठ का शेषांश

सकती। उस दिन करीब एक दर्जन महिलाओं ने मेरे माननीय अतिथि को घेर रखा था। वे अपने धर्म तथा दर्शन और भारत की दुर्दशाग्रस्त जनता की निर्धनता तथा अभावों को दूर करने के लिये हमारे देश (अमेरिका) के धन कमाने के कुछ उपायों को वहाँ प्रचलित करने की अपनी योजनाओं का सविस्तार वर्णन कर रहे थे। उस समय ये महिलाएँ उन बातों का अनुमोदन करते हुए उनकी ओर प्रशंसा भरी दृष्टि से देख रही थीं। इसके बाद उन्होंने कहा – ''मनुष्य की आत्मा एक ऐसा वृत्त है, जिसकी परिधि कहीं भी नहीं है और केन्द्र सर्वत्र है। यह ब्रह्माण्ड महा अनन्त द्वारा निर्मित एक शक्ति है और प्रत्येक विश्व उसका एक अलग-अलग छन्द मात्र है।''

मेरा थका हुआ मन चक्कर खाने लगा और मैंने पाया कि मैं कुर्सी के छोर पर बैठी हूँ, विस्मय के कारण देर से घूरती हुई मेरी आँखें दुख रही हैं, मेरा मुख खुला हुआ है; ... वे अपनी आलोकमयी मधुर भाषा में बोलते जा रहे हैं... और मैं उनकी अद्‌भुत बातें एकाग्र चित्त से सुन रही हूँ। मैं जोरों से आ रही अपनी हँसी को रोकने में असमर्थ होकर उस मण्डली से दूर अकेले में चली गयी। मैं इसमें सफल हुई, पर इसके लिये मुझे भी संघर्ष करना पड़ा था। ...

विदा लेते समय उन्होंने मुझे ''माँ'' कहकर सम्बोधित किया और बताया कि यह भारत की किसी भी महिला के प्रति विशेष स्नेह तथा सम्मान का सूचक है। मैंने इस सम्मान को आनन्दपूर्वक स्वीकार किया। ऐसे पुत्र के प्रति मुझे गर्व की अनुभूति हुई। ❑❑❑

की संख्या बिल्कुल कम है। वहाँ हमारे 'रामकृष्ण मिशन' के कुछ स्कूल चलते हैं। वहाँ रहकर उनको पढ़ाना-लिखाना ! वहाँ से पढ़कर बच्चे इंजीनीयर और डॉक्टर बनकर निकल रहे हैं, छत्तीसगढ़ में यह एक अद्‌भुत काम हो रहा है ! आप लोगों को कभी अवसर मिलता होगा और आपने देखा भी होगा। नारायणपुर के आगे अबूझमाड़ में, ओरछा और वहाँ से भी आगे जो हमारा पहुँचने का आखिरी केन्द्र होता है, वहाँ तक मैं गया हूँ। कुछ अवसर आये हैं, जब मैंने पहली बार उस अबूझमाड़ में १५-२० किलोमीटर अन्दर जाने की कोशिश की है, जब हमारा टावर गिरा था। मुझे मना किया गया कि वहाँ जाना मुश्किल है। वहाँ कोई जाता नहीं है। सड़क नहीं है। मैं पहली बार जीप से १८ किलोमीटर गया था, तब मुझे वहाँ के मील के पत्थरों की दशा तथा वहाँ के सड़कों के बीच में उगे ८-१० फीट के पेड़ों को देखकर पता चला कि पिछले ४० सालों से, वहाँ कोई आता-जाता नहीं है। वहाँ ऐसी परिस्थितियाँ हैं और उन्हें ठीक करने का प्रयास हो रहा है।

मगर उस क्षेत्र में काम करना और वहाँ व्यापक रूप से इतनी शिक्षा का प्रचार करना, इसके लिये मैं बधाई क्या दूँगा, मैं तो कहूँगा कि जिस समाज-सेवा का विवेकानन्द जी ने निर्देश दिया है और जिसे हम जीवन में चरितार्थ करने का प्रयास कर रहे हैं, उसका इससे बड़ा उदाहरण मिलना कठिन है। नारायणपुर में शिक्षा के क्षेत्र में, चिकित्सा के क्षेत्र में, समाज-सुधार के क्षेत्र में, कृषि के क्षेत्र में बड़ी सफलतापूर्वक काम हो रहा है। इसे मैं सबसे बड़ी सफलता मानता हूँ। इसके लिये मैं बधाई क्या दूँगा, मैं तो यही कहना चाहूँगा कि छत्तीसगढ़ में यह अद्भुत काम है ! इसे करना बड़ा कठिन था, पर बड़े अच्छे तरीके से इसे संचालित किया जा रहा है।

आज यहाँ (पाली-क्लीनिक के लिये) जो (चिकित्सकीय) मशीनें दी गईं और एच. पी. सी. एल. के श्री पै जी ने जो अपनी बात रखी, उसके लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

समाज-सेवा के क्षेत्र में, शिक्षा के क्षेत्र में खासतौर से रायपुर और साथ ही नारायणपुर तक सेवा के जो प्रकल्प चल रहे हैं, उनमें आप-सबकी भागीदारी रहती है। सरकार के माध्यम से और हम लोग जो कर सकते हैं, उससे बेहतर तरीके से वहाँ काम का संचालन हो रहा है।

स्वामीजी ने तो काफी कुछ कह दिया है, मुझे कुछ कहने की जरूरत नहीं है, मैं तो सिर्फ यही कहना चाहूँगा कि मेरा आग्रह है कि नारायणपुर जैसे आश्रम तथा स्कूल छत्तीसगढ़ में तीन-चार और होने चाहिये। सरकार उसके लिये तैयार है। बोड़ला के बैगा क्षेत्र में मैंने आग्रह किया था, सरगुजा में मैंने आग्रह किया था कि एक मॉडल स्कूल होना चाहिये। पूरे देश में इसका उदाहरण नहीं मिलता ! मगर स्वामीजी (सत्यरूपानन्दजी) ने कृपा नहीं की। अत: मैं पुन: आग्रह करता हूँ कि ऐसे केन्द्र यदि और भी हों, तो सरकार को भी बेहतर तरीके से उस क्षेत्र में शिक्षा के प्रचार-प्रसार में मदद मिलेगी। हम सब मिलकर छत्तीसगढ़ को बेहतरीन बनाने की ओर ले जाने का प्रयास कर रहे हैं। चरित्र-निर्माण के साथ-ही-साथ शिक्षा और शिक्षा के साथ-साथ रोजगार और रोजगार के साथ चरित्र-निर्माण – ये सारा काम एक साथ रायपुर से लेकर नारायणपुर तक हो रहा है।

इस काम को और भी बेहतर तरीके से आगे बढ़ाने में, मेरी शुभकामनाएँ साथ हैं। सरकार के मुखिया के नाते मेरी जो भूमिका होगी, जो हमने थोड़ा-बहुत किया है, आनेवाले समय में उसे और विस्तारित करने का मुझे सौभाग्य मिले, और कुछ बेहतर तरीके से, इन सारे संस्थानों को आगे बढ़ाने में अपना योगदान दे सकूँ, मदद दे सकूँ, तो मैं स्वयं को सौभाग्यशाली मानूँगा। चूँकि रायपुर में यह कार्यक्रम हो रहा है और यहाँ शिक्षा, चिकित्सा और बच्चों के छात्रावास की बहुत सारी योजनाएँ चल रही हैं, तो मुझे लगता है कि बाकी काम तो चलता रहेगा, सरकार की जो दूसरी सुविधाएँ हैं, हम लोग उस दिशा में आगे बढ़ेंगे। रायुपर के इस अस्पताल को और बेहतर करने के लिये जो जरूरत पड़ेगी, उसके लिये मुख्यमंत्री के नाते जो पाँच लाख रुपये की स्वेच्छा-अनुदान राशि होती है, उसमें से जो जरूरत पड़े, तो आप मुझे आदेश कर सकते हैं। बाकी काम तो होता रहेगा। आज आपने मुझे यहाँ बुलाया, सम्मानित किया और बहुत अच्छी बातें बच्चों के मुँह से सुनने का अवसर मिला। बहुत दिन बाद एक-डेढ़ घंटे आप-सबके बीच रहने का अवसर मिला। हम लोग सबेरे से रात तक बहुत सारे कार्यक्रमों में जाते हैं। मगर कहीं-कहीं बैठकर सुकून मिलता है, अच्छा लगता है; लगता है कि और बैठा जाय, तो ऐसे स्थान बहुत कम होते हैं, जो आज मुझे महसूस हुआ। यहाँ मेरे दो घंटे कैसे निकल गये, इसका पता ही नहीं चला। आप-सबका यह आशीर्वाद बना रहे। हम लोग कोशिश करेंगे कि छत्तीसगढ़ में अब तक जो कुछ हुआ है, उससे बेहतर हो।''

छात्रों के कुछ चुने हुए वक्तव्य

मेरे जीवन के आदर्श स्वामी विवेकानन्द

महेन्द्र कुर्रे *(विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर)*

चरणों पर अर्पित है तुमको,
हम सब का सादर वन्दन।
युग-युग अमर रहें स्वामीजी,
स्वीकारो मम नम्र नमन ।।

आदरणीय अध्यक्ष महोदय, विद्वान् निर्णायक गण एवं सभा की शालीनता में सम्मिलित सम्माननीय श्रोताओ !...

यह वही प्राचीन भूमि है, जिसे अनेक ऋषियों, महर्षियों,

तपस्वियों, दार्शनिकों तथा मनीषियों ने अपने चरण-रज से पवित्र किया है। प्राचीन काल से वेद-वेदान्त, गीता, रामायण तथा अनेक धर्म-ग्रन्थों से हमने अपनी मेधा-शक्ति को प्रबल एवं तेजस्वी बनाया है। हमारी उत्तरोत्तर उन्नति के लिये इनकी एक-एक वाणी अमृत तुल्य है। युगीन परिस्थितियों में युग को दिशा प्रदान कर, उसमें नवीन चेतना का स्फुरण कर शक्ति का आह्वान करनेवाले मेरे आदर्श स्वामी विवेकानन्दजी का विराट् व्यक्तित्व हमारी अन्तरात्मा को झकझोर देता है।

जब भारत को अज्ञान के काले बादलों ने ढँक लिया था, जब भारत लोभ, मोह तथा भोग जैसे कुसंस्कारों से आच्छन्न था। जाति, धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर लोगों में कलह व अशान्ति फैली रहती थी, तब मेरे आदर्श स्वामी विवेकानन्द जी ने जन-मानस को प्रेरणा देकर शान्ति स्थापित की थी। उनका कार्यक्षेत्र सिर्फ राष्ट्र तक ही सीमित नहीं था, वरन् पूरी मानवता उसकी परिधि में आती थी, उनकी वाणी ने मानव समाज को सम्मान दिया है, शक्ति और शान्ति भी दी है। देश के नवयुवकों में आजकल जो साहस और उद्यमशीलता दिखाई देती है, उसके मूल में भी सिर्फ और सिर्फ मेरे आदर्श स्वामी विवेकानन्द ही हैं। ऐसे विराट् व्यक्तित्व से सम्पन्न स्वामी विवेकानन्दजी को मैं अपना आदर्श कैसे न मानूँ !

उदासीन युवा वर्ग को, जिसने दिया अग्नि-सा वचन ।
हम सबका नम्र नमन, मेरे आदर्श स्वामी विवेकानन्द ।

स्वामीजी राष्ट्र को आह्वान करते हुये कहते हैं – विश्वास, विश्वास, स्वयं पर विश्वास! परमात्मा में विश्वास! यही महानता का एकमात्र रहस्य है। यदि पुराणों में कथित तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं पर तुम्हारा विश्वास है, परन्तु अपने आप पर ही विश्वास नहीं है, तो तुम कदापि मोक्ष के अधिकारी नहीं हो सकते। अपने आप पर श्रद्धा करना सीखो और इसी आत्मश्रद्धा के बल से अपने पैरों पर खड़े हो जाओ और बलवान बनो।

स्वामी विवेकानन्दजी हम युवकों से कहते हैं कि इस समय हमें बल और कार्य की जरूरत है – आवश्यकता है, लोहे की तरह ठोस माँस-पेशियों और मजबूत स्नायु वाले शरीरों की। आवश्यकता है, ऐसे दृढ़ इच्छाशक्ति से सम्पन्न होने की, जिसका प्रतिरोध करने में कोई भी समर्थ न हो। आवश्यकता है ऐसे अदम्य इच्छाशक्ति की जो ब्रह्माण्ड के सारे रहस्यों को भेद सके। यदि यह कार्य करने के लिये अथाह समुद्र के मार्ग में जाना पड़े और सदा सब तरफ से मौत का सामना करना पड़े, तो भी हमें यह कार्य करना ही होगा, यही हमारे लिये परम आवश्यक है।

स्वामी विवेकानन्दजी एक महान् आदर्श पुरुष हैं, अत: उनके श्री चरणों में मेरा शत्-शत् नमन।

अन्त में मैं स्वामीजी के साथ आह्वान करता हूँ –

तुम भी उठो, खड़े हो जाओ, कारण नहीं विफलता का ।
पुरुषसिंह, पुरुषार्थ दिखाओ, पथ है यही सफलता का ।।

घनश्याम साहू *(विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर)*

सारा देश जगाया तुमने,
सींचा उजड़ा हुआ चमन ।
हम सबके आदर्श बन गये,
ऋषि नरश्रेष्ठ विवेकानन्द ।।
चरणों में अर्पित है तुमको,
हम सबका सादर वन्दन ।
युग-युग अमर रहे तव गाथा,
स्वीकारो मम नम्र नमन ।।

मेरा आदर्श अवश्य ही थोड़े शब्दों में कहा जा सकता है और वे हैं स्वामी विवेकानन्द। हाँ, वे मेरे आदर्श हैं। आदर्श वही व्यक्ति हो सकता है, जिसके जीवन से हम प्रेरणा प्राप्त कर सकें, अपना सर्वांगीण विकास करके अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकें। मेरे आदर्श स्वामी विवेकानन्द पूरे मानव इतिहास में ऐसी विलक्षण घटना के रूप में भारतीय जन-जीवन के रंगमंच पर प्रकट हुए कि मानव-जाति की आगामी पीढ़ियाँ उन्हें तथा उनके कार्यों को विस्मित होकर समझने और कुछ सीखने का प्रयास करेंगी। हमें चाहिये आध्यात्मिक आदर्श। स्वामीजी ऐसे ही आदर्श हैं, जिन्होंने निरीह और हताश जनता में देशभक्ति का आह्वान किया और एकता का शंखनाद किया। ऐसे युगपुरुष स्वामी विवेकानन्द मेरे आदर्श हैं।

स्वामी विवेकानन्द कहते थे – भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं – त्याग और सेवा। आप इन धाराओं में तीव्रता उत्पन्न कीजिये, शेष सब अपने आप ठीक हो जायेगा। हे तुच्छ प्राणी ! प्रत्येक जीव में जीवात्मा का वास होता है, तू भला उन पर क्या दया करेगा, सेवा कर सेवा। **दरिद्र देवो भव । चाण्डाल देवो भव । मूर्ख देवो भव ।** अर्थात् निर्धन, चाण्डाल, मूर्ख, दु:खी और निर्बल – ये सभी देवतास्वरूप हैं, तुम उनकी पूजा क्यों नहीं करते? तुम गंगा के किनारे खड़े होकर कुँआ क्यों खोदते हो? उनकी पूजा ईश्वर समझकर करो, इसी में तुम्हारा कल्याण है। इस प्रकार की शिक्षा देनेवाले स्वामी विवेकानन्द वास्तव में मेरे जीवन के आदर्श हैं।

उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत – उठो, जागो और लक्ष्य-प्राप्ति तक मत रुको। यह हम युवकों के लिये संजीवनी शक्ति के समान अमृत संदेश है। स्वामीजी कहते थे भारत को महान् बनाने के लिये संगठन शक्ति की आवश्यकता है और हृदय का एकमत हो जाना संगठन-शक्ति का रहस्य है।

स्वामीजी कहते थे – विश्वास! विश्वास! स्वयं पर विश्वास ! यदि ऐसे महान् तपस्वी को हम अपना आदर्श पुरुष न कहें, तो किन्हें कहें ! वे कहते थे कि हमें ऐसे कार्यकर्ता चाहिये, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, जो लक्ष्य की प्राप्ति के लिये

अपनी पूरी शक्ति लगा दे, जो लोगों का हृदय परिवर्तित कर दे और जो स्थान-स्थान पर रचनात्मक केन्द्र स्थापित कर दे।

स्वामीजी प्रत्येक भारतवासी को भारतीय बनाना चाहते थे। उनके व्यक्तित्व में समस्त अतीत और वर्तमान भारत समाहित था। उनके सन्देश तथा उनका आचरण मानव-जाति के लिये आदर्श के रूप में शाश्वत एवं अमर है।

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द एक आदर्श-रूपी दीपक हैं, जो स्वयं प्रज्वलित होकर दूसरे असंख्य लोगों को प्रकाशित कर गये; और सन् १९०२ में ३९ वर्ष की युवावस्था में ही अनन्त की यात्रा के लिये प्रस्थान कर गये।

किन्तु जो लोग कार्यसिद्धि के लिये धरती पर आते हैं, उन्हें क्या मृत्यु मार सकेगी। उनका कार्य, उनकी अनन्त शक्ति, अनन्त साहस, अनन्त उत्साह तथा अनन्त धैर्य – सब अमर हैं। वे तो मृत्युंजय हैं और अन्त में, मैं निम्न पंक्तियों के द्वारा अपने आदर्श की प्रतिमूर्ति स्वामी विवेकानन्द के चरणों में अपनी असीम भक्ति समर्पित करना चाहूँगा –

प्रभु की राह में प्रेमिल रिवाज रखते थे,
मानवीय गुणों की वे इस तरह लाज रखते थे।
दुःखों में डूबकर दुनिया को दे गये खुशियाँ,
वे अपने सिर पर विश्वहित का ताज रखते थे।।

कुमारी भावना ध्रुव (शासकीय नवीन इंजीनियरिंग महाविद्यालय, रायपुर)

न भावना है न भक्ति है, विचार सारगर्भित है।
हृदय के उमड़े हुये भाव सबको सादर समर्पित है।।

श्रोताओ, स्वामी विवेकानन्द ! जिनकी याद आते ही एक ऐसे तेजस्वी व्यक्ति का चित्र आँखों में उभर आता है, जिनके शरीर पर वस्त्र तो हिन्दू संन्यासी के हैं, पर जिनके अन्तर में समूची मानवता के लिये दर्द भरा हुआ है। मनुष्य मात्र ही उनका लक्ष्य है, मनुष्यों की जड़ता का नाश करना ही उनका आदर्श है। स्वामी विवेकानन्द का हृदय समूची मानवता के लिये स्पन्दित होता था। स्वामीजी मनुष्य मात्र को आत्मविश्वासी, आत्मनिर्भर और सशक्त बनाने चाहते थे। इस लक्ष्यप्राप्ति के लिये उन्होंने सर्वदा दृढ़तापूर्वक इस बात पर बल दिया कि हमें धर्म की सच्ची मर्यादा स्थापित करनेवाले तथा उज्ज्वल चरित्र के नागरिकों के निर्माण करने में समर्थ शिक्षा की जरूरत है। हमें ऐसे सिद्धान्तों की जरूरत है, जिससे हम मनुष्य बन सकें। हमें ऐसे सर्वांग-सम्पन्न शिक्षा की आवश्यकता है, जो हमें मनुष्य बना सके और यही सत्य की कसौटी है। जो भी तुमको शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से दुर्बल बनाये, उसे जहर की भाँति त्याग दो। उसमें जीवन-शक्ति नहीं है, वह कभी सत्य नहीं हो सकता। सत्य तो बलप्रद है। सत्य में पवित्रता है। सत्य तो ज्ञानस्वरूप है। सत्य तो वह है, जो शक्ति दे, जो हृदय के अन्धकार को दूर कर दे। स्वामीजी ने हमें सीख दी है कि समग्र मनुष्यों की सेवा ही भगवान की सेवा है। वह भगवान ही सब प्रकार के मनुष्यों के रूप में हमारे सम्मुख खड़ा है। बहुत समय पहले हमारे सामने एक महान् सत्य रखा गया था – **बहुजन-हिताय बहुजन-सुखाय**। पर स्वामीजी ने आगे जाकर कहा – **सर्वजन-हिताय सर्वजन-सुखाय**। यह मन्त्र सबके सामने रखा और कहा – **If you want to serve God, serve a man** – यदि तुम्हें भगवान की सेवा करनी है, तो तुम मनुष्यों की सेवा करो। वहाँ भगवान ही सब प्रकार के मनुष्यों के रूप में तुम्हारे सम्मुख खड़ा है। हमें सिखाया जाता है – **अतिथिदेवो भव, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव**, पर स्वामीजी ने कहा – **दरिद्रदेवो भव, अज्ञानीदेवो भव**। सबको भगवान समझकर, सबको देवता समझ कर, हमें उनकी सेवा करनी चाहिये। यही मानवतावाद का श्रेष्ठतम सिद्धान्त है और इसी सिद्धान्त को स्वामीजी जन-जन तक पहुँचाना चाहते थे। नवीन राष्ट्र के निर्माण के लिये प्रत्येक मनुष्य का मानवतावादी होना जरूरी है और सच्चे मनुष्यों की प्राप्ति के बिना राष्ट्र का निर्माण हो ही नहीं सकता। स्वामीजी ने कहा है – **Man-making is my mission** – सच्चे मनुष्यों का निर्माण करना ही मेरा जीवनोद्देश्य है। अनेक देशभक्तों एवं समाज-सुधारकों द्वारा भारत में मानवतावाद को जीवित रखने के लिये जो नींव तैयार की गई, स्वामीजी उसमें अश्वत्थ होकर उठे। अभिनव भारत को जिस दिशा की ओर जाना था, उसका स्पष्ट संकेत भी स्वामीजी ने ही दिया। स्वामी विवेकानन्द वह सेतु हैं, जिसमें प्राचीन भारत और नवीन भारत परस्पर आलिंगन करते हैं। स्वामी विवेकानन्द वह समुद्र हैं, जिसमें धर्म, राजनीति, अन्तर्राष्ट्रीयता, विज्ञान, उपनिषद् सब-के-सब समाहित हैं।

अन्त में मैं केवल इतना ही कहूँगी कि –

स्वामी विवेकानन्द को शत-शत नमन है।
जिनसे सजा इस देश का उजड़ा चमन है।।
वेदान्त और व्यवहार को समझा सहज ही,
हममें जगायी मानवतावाद की लगन है।।

कुमारी पारुल ठाकुर (सालेम इंग्लिश स्कूल, रायपुर)

गूँज रही है अब भी जग में, युगपावन तव अमर कहानी।
सर्वधर्म समभाव और समता का पाठ सिखाया तुमने।
तब वाणी से मिटी देश के अमित जनों की ज्ञानपिपासा।
करनी करके कर्मयोग का, दिया दिव्य संदेश,
सही अर्थों में सिखा गये मानवता की परिभाषा।।

परमपूज्य स्वामीजी, आदरणीय मुख्य अतिथि महोदय, एवं विशिष्ट अतिथिगण एवं प्रबुद्ध श्रोतागण !

राष्ट्रसेवा की सुगन्ध से सुरभित एक सच्चा देशभक्त इतना

मूल्यवान होता है कि हजारों देशद्रोहियों को तो रात के अँधेरे में भी ढूँढ़ा जा सकता है, पर एक सच्चे देशभक्त को दिन के उजाले में भी ढूँढ पाना कितना कठिन है ! किसी ने कहा है –

हजारों साल रोती है नरगिश अपनी बेनूरी पर,
बड़ी मुद्दत से होता है, चमन में दीदावर पैदा ।।

जो स्थान फूलों में सुगन्ध का, फलों में मिठास का, माँ के दिल में ममता का और सृष्टि के निर्माण में ब्रह्माजी का है, वही स्थान राष्ट्र-निर्माण में स्वामी विवेकानन्द का है । इसीलिये उन्हें राष्ट्र का निर्माता कहा जाता है । स्वामीजी आधुनिक भारत के आदर्श प्रतिनिधि थे । आज की परिस्थिति में उनकी शिक्षायें और उनके संदेश हमारे लिये कितने मूल्यवान हैं, इसे आँकना सहज नहीं होगा ! हमारे राष्ट्र-जीवन का ऐसा कोई पहलू नहीं, ऐसी कोई समस्या नहीं, जिसका समाधान हमें स्वामीजी की शिक्षाओं द्वारा नहीं मिलता हो । उन्होंने राष्ट्र को आह्वान करते हुये कहा था, सुख की समस्त अभिव्यक्तियों को एक केन्द्र पर ले आओ । यह न देखो कि तुम किस झंडे के नीचे खड़े हो, तुम्हारा रंग क्या है । सारे रंगों को मिलाकर चरित्र के उस श्वेत रंग का तीव्र प्रकाश उत्पन्न करो । चरित्र ! संसार चाहता है चरित्र ! क्योंकि चरित्रवान व्यक्ति संसार का हित करते हैं और साहसी व्यक्ति टकराने का साहस । अत: हे साहस के पुंज ! हे अमृतपुत्र ! जाओ, वहाँ जाओ ! जहाँ महामारी हुई हो, अकाल पड़ा हो, जहाँ लोगों को दुख-ही-दुख हो । ज्यादा-से-ज्यादा क्या होगा, मर ही तो जाओगे –

मिटा दे अपनी हस्ती को अगर तो मर्तबा चाहे ।
कि दाना खाक में मिलकर गुले गुलजार बनता है ।।

स्वामीजी ने शिकागो की धर्मसभा में विश्व के विशाल जनसमूह को मानवता के आधार पर एकता के सूत्र में बाँधने का भगीरथ प्रयास किया था, अपने भाषण में 'बहनो और भाइयो' कहकर अपनी चारित्रिक शक्ति का परिचय दिया ।

आज चारों ओर चारित्रिक संकट दीख रहा है, इस कारण आज सत्ता की राजनीति ने देश को भयंकर मँहगाई और भ्रष्टाचार के गर्भ में ढकेल दिया है । वस्तुत: महान् वही है, जिसका चरित्र सदा और सभी अवस्थाओं में महान् और एक जैसा रहता है । अत: चरित्रवान बनो । मन-वाणी और धर्म से पवित्र बनो । **आचारहीनः न पुनन्ति वेदाः** – आचारहीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते । अर्थात् आचार के बिना मनुष्य न तो अपना हित कर सकता है, न ही संसार का –

परवाह नहीं उन्हें कि जमाना खिलाफ है ।
रास्ता वही चुनेंगे, जो नेक और साफ है ।।

स्वामीजी ने प्राच्य और पाश्चात्य को जोड़कर एक ऐसे विश्व का निर्माण करना चाहा, जिसमें न प्राच्य रहे, न पाश्चात्य, रहे तो केवल मानवता । उन्होंने अपनी विवेक की प्रज्वलित ज्ञानाग्नि से समस्त मानव-जाति के हृदय में व्यक्तित्व-अग्नि को प्रज्वलित करने की दिशा में कार्य कर एक महान् साहस का परिचय दिया । जब स्वामीजी का आविर्भाव हुआ था, तब हमारा देश सदियों से इस्लामी और पश्चिमी संस्कृति के आक्रमण से घोंघे के समान अपनी खाल में आश्रय ले रहा था । आक्रमण का साहस तो दूर, स्वयं को विश्व के सम्मुख उपस्थित करने की क्षमता भी वह खो चुका था । ऐसे परिवेश में उन्होंने **उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत** का महामंत्र देकर भारतवासियों की सुषुप्त आत्मशक्ति को जाग्रत किया और इसके परिणाम-स्वरूप, जब भारत ने उठना प्रारम्भ किया, तो फिर पीछे मुड़कर कभी नहीं देखा । स्वामीजी कहा करते थे – भारत का पुनरुत्थान होगा, पर शारीरिक नहीं, वरन् आत्मा की शक्ति से । वह उत्थान विनाश की ध्वजा लेकर नहीं, वरन् प्रेम और शक्ति की ध्वजा लेकर । उठो, भारत माता धीरे-धीरे आँखें खोल रही है, उसे जगाओ और पहले की अपेक्षा और भी अधिक गौरवमण्डित करके भक्ति-भाव से सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दो । स्वामीजी के उद्गारों ने आजादी के आन्दोलन में प्राण फूँक दिये । जब क्रान्तिकारी को फाँसी पर लटकाया जाता, तो एक हाथ में गीता और दूसरे हाथ में स्वामीजी की पुस्तकें हुआ करतीं ।

वेदान्त हमारा स्वाभिमान, शिष्टता हमारी सीता है ।
हर शब्द हमारा सिद्धमंत्र, हर साँस हमारी गीता है ।।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन – तुम्हारा अधिकार केवल कर्म में है, कर्मफल में बिल्कुल नहीं । स्वामीजी कहा करते थे, पवित्रता ही आध्यात्मिक सत्य है । पवित्र-हृदयवाले धन्य हैं, क्योंकि वे ही ईश्वर का दर्शन करेंगे । जिस व्यक्ति में आत्मविश्वास नहीं, वह सबसे बड़ा कापुरुष है । गर्व से कहो कि मैं चुल्लुओं से सारे समुद्र का पानी पी जाऊँगा । मैं ऐसे प्रश्नों में उलझना नहीं चाहता कि मूर्तियाँ रहें या नहीं, जातिप्रथा बुरी है या नहीं । हर व्यक्ति को अपनी मुक्ति का मार्ग ढूँढ़ना पड़ेगा । यदि पहाड़ मोहम्मद के पास नहीं आयेगा, तो मोहम्मद को पहाड़ के पास जाना होगा ।

हिमालय भी जिसकी ऊँचाई नाप नहीं सकता,
सागर भी जिसकी गहराई नाप नहीं सकता ।
मानवीय धरातल का एक ऐसा व्यक्तित्व बनो,
आकाश भी जिसे अपनी बाँहों में थाम नहीं सकता ।

जो कुछ असत्य है, उसे अपने पास फटकने मत दो । सत्य पर डटे रहो, तभी आप सफल होगे । अन्त में –

कुछ कर गुजरने की आग जीने नहीं देती,
कुछ न कर पाने का एहसास मरने नहीं देता ।
यकीन की चिनगारी अश्क पीने नहीं देती,
और अटल इरादे शिकस्त पर रोने नहीं देती ।।

(संकलक – शंकर कुमेटी,
विवेकानन्द विद्यार्थी भवन, रायपुर)